हरिशंकर परसाई की चुनिंदा व्यंग्य रचनाएं(द्वितीय भाग)

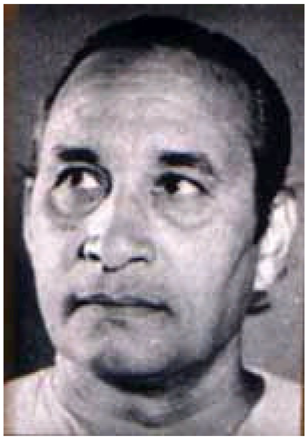

हिंदी के महान व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई की कुछ चुनिंदा रचनाओं का संकलन............

अनुक्रम

क्रांतिकारी की कथा
पवित्रता का दौरा
पुलिस-मंत्री का पुतला
वह जो आदमी है न
नया साल
घायल बसंत
संस्कृति
बारात की वापसी
ग्रीटिंग कार्ड और राशन कार्ड
हरिशंकर परसाई के लेखन के उद्धरण
उखड़े खंभे
भोलाराम का जीव
शर्म की बात पर ताली पीटना
पिटने-पिटने में फर्क
यस सर
बदचलन
एक अशुद्ध बेवकूफ
भारत को चाहिए जादूगर और साधु
भगत की गत
मुण्डन
दो नाक वाले लोग

क्रांतिकारी की कथा

'क्रांतिकारी' उसने उपनाम रखा था। खूब पढ़ा-लिखा युवक। स्वस्थ, सुंदर। नौकरी भी अच्छी। विद्रोही। मार्क्स-लेनिन के उद्धरण देता, चे-ग्वेवारा का खास भक्त।

कॉफी हाउस में काफी देर तक बैठता। खूब बातें करता। हमेशा क्रांतिकारिता के तनाव में रहता। सब उलट-पुलट देना है। सब बदल देना है। बाल बड़े, दाड़ी करीने से बढ़ाई हुई।

विद्रोह की घोषणा करता। कुछ करने का मौका ढूंढता। कहता- "मेरे पिता की पीढ़ी को जल्दी मरना चाहिए। मेरे पिता घोर दकियानूस, जातिवादी, प्रतिक्रियावादी हैं। ठेठ बुर्जुआ। जब वे मरेंगे तब मैं न मुंडन कराऊंगा, न उनका श्राद्ध करूंगा। मैं सब परंपराओं का नाश कर दूंगा। चे-ग्वेवारा जिंदाबाद।"

कोई साथी कहता, "पर तुम्हारे पिता तुम्हें बहुत प्यार करते हैं।"

क्रांतिकारी कहता, "प्यार? हाँ, हर बुर्जुआ क्रांतिकारिता को मारने के लिए प्यार करता है। यह प्यार षणयंत्र है। तुम लोग नहीं समझते। इस समय मेरा बाप किसी ब्राह्मण की तलाश में है जिससे बीस-पच्चीस हजार रुपये लेकर उसकी लड़की से मेरी शादी कर देगा। पर मैं नहीं होने दूंगा। मैं जाति में शादी करूंगा ही नहीं। मैं दूसरी जाति की, किसी नीच जाति की लड़की से शादी करूंगा। मेरा बाप सिर धुनता बैठा रहेगा।"

साथी ने कहा, "अगर तुम्हारा प्यार किसी लड़की से हो जाए और संयोग से वह ब्राह्मण हो तो तुम शादी करोगे न?"

उसने कहा, "हरगिज नहीं। मैं उसे छोड़ दूंगा। कोई क्रांतिकारी अपनी जाति की लड़की से न प्यार करता है, न शादी। मेरा प्यार है एक कायस्थ लड़की से। मैं उससे शादी करूंगा।"

एक दिन उसने कायस्थ लड़की से कोर्ट में शादी कर ली। उसे लेकर अपने शहर आया और दोस्त के घर पर ठहर गया।

बड़े शहीदाना मूड में था। कह रहा था, "आई ब्रोक देअर नेक। मेरा बाप इस समय सिर धुन रहा होगा, मां रो रही होगी। मुहल्ले-पड़ोस के लोगों को इकट्ठा करके मेरा बाप कह रहा होगा 'हमारे लिए लड़का मर चुका'। वह मुझे त्याग देगा। मुझे प्रापर्टी से वंचित कर

देगा। आई डोंट केअर। मैं कोई भी बलिदान करने को तैयार हूं। वह घर मेरे लिए दुश्मन का घर हो गया। बट आई विल फाइट टू दी एंड-टू दी एंड।"

वह बरामदे में तना हुआ घूमता। फिर बैठ जाता, कहता, "बस संघर्ष आ ही रहा है।"

उसका एक दोस्त आया। बोला, "तुम्हारे फादर कह रहे थे कि तुम पत्नी को लेकर सीधे घर क्यों नहीं आए। वे तो काफी शांत थे। कह रहे थे, लड़के और बहू को घर ले आओ।"

वह उत्तेजित हो गया, "हूँ, बुर्जुआ हिपोक्रेसी। यह एक षणयंत्र है। वे मुझे घर बुलाकर फिर अपमान करके, हल्ला करके, निकालेंगे। उन्होंने मुझे त्याग दिया है तो मैं क्यों समझौता करूं। मैं दो कमरे किराए पर लेकर रहूंगा।"

दोस्त ने कहा, "पर तुम्हें त्यागा कहां है?"

उसने कहा, "मैं सब जानता हूं- आई विल फाइट।"

दोस्त ने कहा, "जब लड़ाई है ही नहीं तो फाइट क्या करोगे?"

क्रांतिकारी कल्पनाओं में था। हथियार पैने कर रहा था। बारूद सुखा रहा था। क्रांति का निर्णायक क्षण आने वाला है। मैं वीरता से लड़ूंगा। बलिदान हो जाऊंगा।

तीसरे दिन उसका एक खास दोस्त आया। उसने कहा, "तुम्हारे माता-पिता टैक्सी लेकर तुम्हें लेने आ रहे हैं। इतवार को तुम्हारी शादी के उपलक्ष्य में भोज है। यह निमंत्रण-पत्र बांटा जा रहा है।"

क्रांतिकारी ने सर ठोंक लिया। पसीना बहने लगा। पीला हो गया। बोला, "हाय, सब खत्म हो गया। जिंदगी भर की संघर्ष-साधना खत्म हो गयी। नो स्ट्रगल। नो रेवोल्यूशन। मैं हार गया। वे मुझे लेने आ रहे है। मैं लड़ना चाहता था। मेरी क्रांतिकारिता! मेरी क्रांतिकारिता! देवी, तू मेरे बाप से मेरा तिरस्कार करवा। चे-ग्वेवारा! डियर चे!"

उसकी पत्नी चतुर थी। वह दो-तीन दिनों से क्रांतिकारिता देख रही थी और हंस रही थी। उसने कहा, "डियर एक बात कहूं। तुम क्रांतिकारी नहीं हो।"

उसने पूछा, "नहीं हूं। फिर क्या हूं?"

पत्नी ने कहा, "तुम एक बुर्जुआ बौड़म हो। पर मैं तुम्हें प्यार करती हूँ।"

पवित्रता का दौरा

सुबह की डाक से चिट्ठी मिली, उसने मुझे इस अहंकार में दिन-भर उड़ाया कि मैं पवित्र आदमी हूं क्योंकि साहित्य का काम एक पवित्र काम है। दिन-भर मैंने हर मिलने वाले को तुच्छ समझा। मैं हर आदमी को अपवित्र मानकर उससे अपने को बचाता रहा। पवित्रता ऐसी कायर चीज है कि सबसे डरती है और सबसे अपनी रक्षा के लिए सचेत रहती है। अपने पवित्र होने का एहसास आदमी को ऐसा मदमाता है कि वह उठे हुए सांड की तरह लोगों को सींग मारता है, ठेले उलटाता है, बच्चों को रगेदता है। पवित्रता की भावना से भरा लेखक उस मोर जैसा होता है जिसके पांव में घुंघरू बांध दिए गए हों। वह इत्र की ऐसी शीशी है जो गंदी नाली के किनारे की दुकान पर रखी है। यह इत्र गंदगी के डर से शीशी में ही बंद रहता है।

वह चिट्ठी साहित्य की एक मशहूर संस्था के सचिव की तरफ से थी। मैं उस संस्था का, जिसका लाखों का कारोबार है, सदस्य बना लिया गया हूं। स्थायी समिति का सदस्य हूं। यह संस्था हम लोगों को बैठकों में शामिल होने का खर्च नहीं देती क्योंकि पैसा साहित्य के पवित्र काम में लगे हुए पवित्र पदाधिकारियों के हड़पने में ही खर्च हो जाता है। सचिव ने कि साहित्य भवन के सामने एक सिनेमा बनाने की मंजूरी मिल रही है। सिनेमा बनने से साहित्य भवन की पवित्रता, सौम्यता और शांति भंग होगी। वातावरण दूषित होगा। हम मुख्यमंत्री को सिनेमा निर्माण न होने देने के लिए ज्ञापन दे रहे हैं। आप भी इस पर दस्तखत कर दीजिए।

इस चिट्ठी से मुझे बोध हुआ कि साहित्य पवित्र है, हम साहित्यकार पवित्र हैं और साहित्य की यह संस्था पवित्र है। मेरे दुष्ट मन ने एक शंका भी उठाई कि हो सकता है किसी ऐसे पैसेवाले ने, जिसे उस जगह दुकान खोलनी है, हमारे पवित्र साहित्य के पवित्र सचिव को पैसा खिला दिया हो कि सिनेमा न बनने दो। पर मैंने इस दुष्ट शंका को दबा दिया। नहीं, नहीं, साहित्य की संस्था पवित्र है, सिनेमा अपवित्र है। हमें अपवित्रता से अपना पल्ला बचा लेना चाहिए।

शाम की डाक से संस्था के विपक्षी गुट के नेता की चिट्ठी आई जिसमें संस्था में किए जा रहे भ्रष्टाचार का ब्यौरा दिया गया था।

इस पत्र ने मुझे झकझोरा। अपनी पवित्रता पर मुझे शंका हुई। साहित्य के काम की पवित्रता पर शंका हुई। साहित्य की संस्था की पवित्रता की मेरी उठान शांत हुई और मैं नार्मल हो गया।

इतने साल साहित्य के क्षेत्र में हो गए। मैं कई बार पवित्र होने की दुर्घटना में फंसा, पर हर बार बच गया। मुझे लिखते जब कुछ ही समय हुआ था, तभी बुजुर्ग साहित्यकार मुझसे कहते थे- आपने साहित्य रचना का कार्य अपने हाथ में लिया है। माता वीण-पाणि के मंदिर की पवित्रता बनाए रखिए। मैं थोड़ा फूलता था। सोचता था, सिगरेट पीना छोड़ दूं क्योंकि इस धुंए से देवी के मंदिर के धूप की सुगंध दबती होगी। पर मैं उबर आया। वे बुजुर्ग कहते- मां भारती ने आपके सामने आंचल फैलाया है। उसे मणियों से भर दीजिए। (वैसे कवि 'अंचल' उस दिन कह रहे थे कि हम तो अब 'रजाई' हो गए)। जी हां, मां भारती के अंचल में आप कचरा डालते जाएं और उसी में मैं मणि छोड़ता जाऊं। ये पवित्र लोग और पवित्र ही लिखने वाले लोग बड़े दिलचस्प होते हैं। एक मुझसे बार-बार कहते- आप अब कुछ शाश्वत साहित्य लिखिए। मैं तो शाश्वत साहित्य ही लिखता हूं। वे सट्टे का फिगर रोज नया लगाते थे, मगर साहित्य शाश्वत लिखते थे। वे मुझे बाल्मीकि की तरह दीमकों के बमीठे में दबे हुए लगते थे। शाश्वत साहित्य लिखने का संकल्प लेकर बैठने वाले मैंने तुरंत मरते देखे हैं। एक शाश्वत साहित्य लिखने वाले ने कई साल पहले मुझसे कहा था- अरे, आप स्कूल मास्टर होकर भी इतना अच्छा लिखते हैं। मैं तो सोचता था, आप प्रोफेसर होंगे। उन्होंने स्कूल-मास्टर लेखक की हमेशा उपेक्षा की। वे खुद प्रोफेसर रहे। पर आगे उनकी यह दुर्गति हुई कि उन्हें कोर्स में लगी मेरी ही रचनाएं कक्षा में पढ़ानी पड़ीं। उनका शाश्वत साहित्य कोर्स में नहीं लगा।

सोचता हूं, हम कहां के पवित्र हैं। हममें से अधिकांश ने अपनी लेखनी को रंडी बना दिया है, जो पैसे के लिए किसी के भी साथ सो जाती है। सत्ता इस लेखनी से बलात्कार कर लेती है और हम रिपोर्ट तक नहीं करते। कितने नीचों की तारीफ मैंने नहीं लिखी। कितने मिथ्या का प्रचार मैंने नहीं किया। अखबारों के मालिकों का रुख देखकर मेरे सत्य ने रूप बदले हैं। मुझसे सिनेमा के चाहे जैसे डायलाग कोई लिखा ले। मैं इसी कलम से बलात्कार की प्रशंसा में भी फिल्मी गीत लिख सकता हूं और भगवद् भजन भी लिख सकता हूं। मुझसे आज पैसे देकर मजदूर विरोधी अखबार का संपादन करा लो और कल मैं उससे ज्यादा पैसे लेकर ट्रेड-यूनियन के अखबार का संपादन कर दूं। इसी कलम से

मैंने पहले ‘इंदिरा गांधी जिंदाबाद’ लिखा था, फिर ‘इंदिरा गांधी मुर्दाबाद’ लिखा था, और अब फिर ‘इंदिरा भारत है’ लिख रहा हूं।

क्या हमारी पवित्रता है? साहित्य भवन की पवित्रता को सिनेमा भवन क्या नष्ट कर देगा? पर होता तो है पवित्रता, शराफत, चरित्र का एक गुमान। इधर ही एक मुहल्ले में सिनेमा बनने वाला था, तो शरीफों ने बड़ा हल्ला मचाया- यह शरीफों का मोहल्ला है। यहां शरीफ स्त्रियां रहती हैं और यहां सिनेमा बन रहा है। गोया सिनेमा गुंडों के मोहल्ले में बनना चाहिए ताकि इनके घरों की शरीफ औरते सिनेमा देखने गुंडों के बीच जाएं। मुहल्ले में एक आदमी रहता है। उससे मिलने एक स्त्री आती है। एक सज्जन कहने लगे- यह शरीफों का मुहल्ला है। यहां यह सब नहीं होना चाहिए। देखिए, फलां के पास एक स्त्री आती है। मैंने कहा- साहब, शरीफों का मुहल्ला है, तभी तो वह स्त्री अपने पुरुष मित्र से मिलने बेखटके आती है। क्या वह गुंडों के मुहल्ले में उससे मिलने जाती?

पवित्रता का यह हाल है कि जब किसी मंदिर के पास से शराब की दुकान हटाने की मांग लोग करते हैं, तब पुजारी बहुत दुखी होता है। उसे लेने के लिए दूर जाना पड़ेगा। यहां तो ठेकेदार भक्ति-भाव में कभी-कभी मुफ्त भी पिला देता था।

मैं शाम वाले पत्र से हल्का हो गया। पवित्रता का मेरा नशा उतर गया। मैंने सोचा, साहित्य भवन के सचिव को लिखूं- मुझे दूसरे पक्ष का पत्र भी मिल गया है जिसमें बताया गया है कि अपनी संस्था में कितना भ्रष्टाचार है। अब तो सिनेमा-मालिक को ही मांग करनी चाहिए कि यह साहित्य की संस्था यहां से हटाई जाए, जिससे दर्शकों की नैतिकता पर बुरा असर न पड़े। इसमें बड़ा भ्रष्टाचार है।

पुलिस-मंत्री का पुतला

एक राज्य में एक शहर के लोगों पर पुलिस-जुल्म हुआ तो लोगों ने तय किया कि पुलिस-मंत्री का पुतला जलाएंगे।

पुतला बड़ा कद्दावर और भयानक चेहरे वाला बनाया गया।

पर दफा 144 लग गई और पुतला पुलिस ने जब्त कर लिया।

अब पुलिस के सामने यह समस्या आ गई कि पुतले का क्या किया जाए। पुलिसवालों ने बड़े अफसरों से पूछा, “साहब, यह पुतला जगह रोके कब तक पड़ा रहेगा? इसे जला दें या नष्ट कर दें?”

अफसरों ने कहा, “गजब करते हो। मंत्री का पुतला है। उसे हम कैसे जलाएंगे? नौकरी खोना है क्या?”

इतने में रामलीला का मौसम आ गया। एक बड़े पुलिस अफसर को ‘ब्रेनवेव’ आ गई। उसने रामलीला वालों को बुलाकर कहा, “तुम्हें दशहरे पर जलाने के लिए रावण का पुतला चाहिए न? इसे ले जाओ। इसमें सिर्फ नौ सिर कम हैं, सो लगा लेना।”

वह जो आदमी है न

निंदा में विटामिन और प्रोटीन होते हैं। निंदा खून साफ करती है, पाचन-क्रिया ठीक करती है, बल और स्फूर्ति देती है। निंदा से मांसपेशियां पुष्ट होती हैं। निंदा पायरिया का तो शर्तिया इलाज है। संतों को परनिंदा की मनाही होती है, इसलिए वे स्वनिंदा करके स्वास्थ्य अच्छा रखते हैं। ‘मौसम कौन कुटिल खल कामी’- यह संत की विनय और आत्मग्लानि नहीं है, टॉनिक है। संत बड़ा कांइया होता है। हम समझते हैं, वह आत्मस्वीकृति कर रहा है, पर वास्तव में वह विटामिन और प्रोटीन खा रहा है।

स्वास्थ्य विज्ञान की एक मूल स्थापना तो मैंने कर दी। अब डॉक्टरों का कुल इतना काम बचा कि वे शोध करें कि किस तरह की निंदा में कौन से और कितने विटामिन होते हैं, कितना प्रोटीन होता है। मेरा अंदाज है, स्त्री संबंधी निंदा में प्रोटीन बड़ी मात्रा में होता है और शराब संबंधी निंदा में विटामिन बहुत होते हैं।

मेरे सामने जो स्वस्थ सज्जन बैठे थे, वे कह रहे थे- आपको मालूम है, वह आदमी शराब पीता है?

मैंने ध्यान नहीं दिया। उन्होंने फिर कहा- वह शराब पीता है।

निंदा में अगर उत्साह न दिखाओ तो करने वालों को जूता-सा लगता है। वे तीन बार बात कह चुके और मैं चुप रहा, तीन जूते उन्हें लग गए। अब मुझे दया आ गई। उनका चेहरा उतर गया था।

मैंने कहा- पीने दो।

वे चकित हुए। बोले- पीने दो, आप कहते हैं पीने दो?

मैंने कहा- हां, हम लोग न उसके बाप हैं, न शुभचिंतक। उसके पीने से अपना कोई नुकसान भी नहीं है।

उन्हें संतोष नहीं हुआ। वे उस बात को फिर-फिर रेतते रहे।

तब मैंने लगातार उनसे कुछ सवाल कर डाले- आप चावल ज्यादा खाते हैं या रोटी? किस करवट सोते हैं? जूते में पहले दाहिना पांव डालते हैं या बायां? स्त्री के साथ रोज संभोग करते हैं या कुछ अंतर देकर?

अब वे 'हीं-हीं' पर उतर आए। कहने लगे- ये तो प्राईवेट बातें हैं, इनसे क्या मतलब।

मैंने कहा- वह क्या खाता-पीता है, यह उसकी प्राईवेट बात है। मगर इससे आपको जरूर मतलब है। किसी दिन आप उसके रसोईघर में घुसकर पता लगा लेंगे कि कौन-सी दाल बनी है और सड़क पर खड़े होकर चिल्लाएंगे- वह बड़ा दुराचारी है। वह उड़द की दाल खाता है।

तनाव आ गया। मैं पोलाइट हो गया- छोड़ो यार, इस बात को। वेद में सोमरस की स्तुति में 60-62 मंत्र हैं। सोमरस को पिता और ईश्वर तक कहा गया है। कहते हैं- तुमने मुझे अमर बना दिया। यहां तक कहा है कि अब मैं पृथ्वी को अपनी हथेलियों में लेकर मसल सकता हूं।(ऋषि को ज्यादा चढ़ गई होगी।) चेतन को दबाकर राहत पाने या चेतना का विस्तार करने के लिए सब जातियों के ऋषि किसी मादक द्रव्य का उपयोग करते थे।

चेतना का विस्तार। हां, कई की चेतना का विस्तार देख चुका हूं। एक संपन्न सज्जन की चेतना का इतना विस्तार हो जाता है कि वे रिक्शेवाले को रास्ते में पान खिलाते हैं, सिगरेट पिलाते हैं, और फिर दुगने पैसे देते हैं। पीने के बाद वे 'प्रोलेतारियत' हो जाते हैं।

कभी-कभी रिक्शेवाले को बिठाकर खुद रिक्शा चलाने लगते हैं। वे यों भी भले आदमी हैं। पर कुछ मैंने ऐसे देखे हैं, जो होश में मानवीय हो ही नहीं सकते। मानवीयता उन पर रम के 'किक' की तरह चढ़ती-उतरती है। इन्हें मानवीयता के 'फिट' आते हैं- मिरगी की तरह। सुना है मिरगी जूता सुंघाने से उतर जाती है। इसका उल्टा भी होता है। किसी-किसी को जूता सुंघाने से मानवीयता का फिट भी आ जाता है। यह नुस्खा भी आजमाया हुआ है।

एक और चेतना का विस्तार मैंने देखा था। एक शाम रामविलास शर्मा के घर हम लोग बैठे थे(आगरा वाले रामविलास शर्मा नहीं। वे तो दुग्धपान करते हैं और प्रातः समय की वायु को 'सेवन करता सुजान' होते हैं)। यह रोडवेज के अपने कवि रामविलास शर्मा हैं। उनके एक सहयोगी की चेतना का विस्तार कुल डेढ़ पेग में हो गया और वे अंग्रेजी बोलने लगे। कबीर ने कहा है- 'मन मस्त हुआ तब क्यों बोले'। यह क्यों नहीं कहा कि मन मस्त हुआ तब अंग्रेजी बोले। नीचे होटल से खाना उन्हीं को खाना था। हमने कहा- अब इन्हें मत भेजो। ये अंग्रेजी बोलने लगे। पर उनकी चेतना का विस्तार जरा ज्यादा ही हो गया था। कहने कहने लगे- नो सर, नो सर, आई शैल ब्रिंग ब्यूटीफुल मुर्गा। 'अंग्रेजी' भाषा का कमाल देखिए। थोड़ी ही पढ़ी है, मगर खाने की चीज को खूबसूरत कह रहे हैं। जो भी खूबसूरत दिखा, उसे खा गए। यह भाषा रूप में भी स्वाद देखती है। रूप देखकर उल्लास नहीं होता, जीभ में पानी आने लगता है। ऐसी भाषा साम्राज्यवाद के बड़े काम की होती है। कहा- इंडिया इज ए ब्यूटीफुल कंट्री। और छुरी-कांटे से इंडिया को खाने लगे। जब आधा खा चुके, तब देशी खाने वालों ने कहा, अगर इंडिया इतना खूबसूरत है, तो बाकी हमें खा लेने दो। तुमने 'इंडिया' खा लिया। बाकी बचा 'भारत' हमें खाने दो। अंग्रेज ने कहा- अच्छा, हमें दस्त लगने लगे हैं। हम तो जाते हैं। तुम खाते रहना। यह बातचीत 1947 में हुई थी। हम लोगों ने कहा- अहिंसक क्रांति हो गई। बाहर वालों ने कहा- यह ट्रांसफर ऑफ पॉवर है- सत्ता का हस्तांतरण। मगर सच पूछो तो यह 'ट्रांसफर ऑफ डिश' हुआ- थाली उनके सामने से इनके सामने आ गई। वे देश को पश्चिमी सभ्यता के सलाद के साथ खाते थे। ये जनतंत्र के अचार के साथ खाते हैं।

फिर राजनीति आ गई। छोड़िए। बात शराब की हो रही थी। इस संबंध में जो शिक्षाप्रद बातें ऊपर कहीं हैं, उन पर कोई अमल करेगा, तो अपनी 'रिस्क' पर। नुकसान की जिम्मेदारी कंपनी की नहीं होगी। मगर बात शराब की भी नहीं, उस पवित्र आदमी की हो रही थी, जो मेरे सामने बैठा किसी के दुराचार पर चिंतित था।

मैं चिंतित नहीं था, इसलिए वह नाराज और दुखी था।

मुझे शामिल किए बिना वह मानेगा नहीं। वह शराब से स्त्री पर आ गया- और वह जो है न, अमुक स्त्री से उसके अनैतिक संबंध हैं।

मैंने कहा- हां, यह बड़ी खराब बात है।

उसका चेहरा अब खिल गया। बोला- है न?

मैंने कहा- हां खराब बात यह है कि उस स्त्री से अपना संबंध नहीं है।

वह मुझसे बिल्कुल निराश हो गया। सोचता होगा, कैसा पत्थर आदमी है यह कि इतने ऊंचे दर्जे के 'स्कैंडल' में भी दिलचस्पी नहीं ले रहा। वह उठ गया। और मैं सोचता रहा कि लोग समझते हैं कि हम खिड़की हवा और रोशनी के लिए बनवाते हैं, मगर वास्तव में खिड़की अंदर झांकने के लिए होती है।

कितने लोग हैं जो 'चरित्रहीन' होने की इच्छा मन में पाले रहते हैं, मगर हो नहीं सकते और निरे 'चरित्रवान' होकर मर जाते हैं। आत्मा को परलोक में भी चैन नहीं मिलता होगा और वह पृथ्वी पर लोगों के घरों में झांककर देखती होगी कि किसका संबंध किससे चल रहा है।

किसी स्त्री और पुरुष के संबंध में जो बात अखरती है, वह अनैतिकता नहीं है, बल्कि यह है कि हाय उसकी जगह हम नहीं हुए। ऐसे लोग मुझे चुंगी के दरोगा मालूम होते हैं। हर आते-जाते ठेले को रोककर झांककर पूछते हैं- तेरे भीतर क्या छिपा है?

एक स्त्री के पिता के पास हितकारी लोग जाकर सलाह देते हैं- उस आदमी को घर में मत आने दिया करिए। वह चरित्रहीन है।

वे बेचारे वास्तव में शिकायत करते हैं कि पिताजी, आपकी बेटी हमें 'चरित्रहीन' होने का चांस नहीं दे रही है। उसे डांटिए न कि हमें भी थोड़ा चरित्रहीन हो लेने दे।

जिस आदमी की स्त्री-संबंधी कलंक कथा वह कह रहा था, वह भला आदमी है- ईमानदार, सच्चा, दयालु, त्यागी। वह धोखा नहीं करता, कालाबाजारी नहीं करता, किसी को ठगता नहीं है, घूस नहीं खाता, किसी का बुरा नहीं करता।

एक स्त्री से उसकी मित्रता है। इससे वह आदमी बुरा और अनैतिक हो गया।

बड़ा सरल हिसाब है अपने यहां आदमी के बारे में निर्णय लेने का। कभी सवाल उठा होगा समाज के नीतिवानों के बीच के नैतिक-अनैतिक, अच्छे-बुरे आदमी का निर्णय कैसे किया जाए। वे परेशान होंगे। बहुत सी बातों पर आदमी के बारे में विचार करना पड़ता है, तब निर्णय होता है। तब उन्होंने कहा होगा- ज्यादा झंझट में मत पड़ो। मामला सरल कर लो। सारी नैतिकता को समेटकर टांगों के बीच में रख लो।

नया साल

साधो, बीता साल गुजर गया और नया साल शुरू हो गया। नए साल के शुरू में शुभकामना देने की परंपरा है। मैं तुम्हें शुभकामना देने में हिचकता हूं। बात यह है साधो कि कोई शुभकामना अब कारगर नहीं होती। मान लो कि मैं कहूं कि ईश्वर नया वर्ष तुम्हारे लिए सुखदाई करें तो तुम्हें दुख देने वाले ईश्वर से ही लड़ने लगेंगे। ये कहेंगे, देखते हैं, तुम्हें ईश्वर कैसे सुख देता है। साधो, कुछ लोग ईश्वर से भी बड़े हो गए हैं। ईश्वर तुम्हें सुख देने की योजना बनाता है, तो ये लोग उसे काटकर दुख देने की योजना बना लेते हैं।

साधो, मैं कैसे कहूं कि यह वर्ष तुम्हें सुख दे। सुख देनेवाला न वर्ष है, न मैं हूं और न ईश्वर है। सुख और दुख देनेवाले दूसरे हैं। मैं कहूं कि तुम्हें सुख हो। ईश्वर भी मेरी बात मानकर अच्छी फसल दे! मगर फसल आते ही व्यापारी अनाज दबा दें और कीमतें बढ़ा दें तो तुम्हें सुख नहीं होगा। इसलिए तुम्हारे सुख की कामना व्यर्थ है।

साधो, तुम्हें याद होगा कि नए साल के आरंभ में भी मैंने तुम्हें शुभकामना दी थी। मगर पूरा साल तुम्हारे लिए दुख में बीता। हर महीने कीमतें बढ़ती गईं। तुम चीख-पुकार करते थे तो सरकार व्यापारियों को धमकी दे देती थी। ज्यादा शोर मचाओ तो दो-चार व्यापारी गिरफ्तार कर लेते हैं। अब तो तुम्हारा पेट भर गया होगा। साधो, वह पता नहीं कौन-सा आर्थिक नियम है कि ज्यों-ज्यों व्यापारी गिरफ्तार होते गए, त्यों-त्यों कीमतें बढ़ती गईं। मुझे तो ऐसा लगता है, मुनाफाखोर को गिरफ्तार करना एक पाप है। इसी पाप के कारण कीमतें बढ़ीं।

साधो, मेरी कामना अक्सर उल्टी हो जाती है। पिछले साल एक सरकारी कर्मचारी के लिए मैंने सुख की कामना की थी। नतीजा यह हुआ कि वह घूस खाने लगा। उसे मेरी इच्छा पूरी करनी थी और घूस खाए बिना कोई सरकारी कर्मचारी सुखी हो नहीं सकता। साधो, साल-भर तो वह सुखी रहा मगर दिसंबर में गिरफ्तार हो गया। एक विद्यार्थी से मैंने कहा था कि नया वर्ष सुखमय हो, तो उसने फर्स्ट क्लास पाने के लिए परीक्षा में

नकल कर ली। एक नेता से मैंने कह दिया था कि इस वर्ष आपका जीवन सुखमय हो, तो वह संस्था का पैसा खा गया। साधो, एक ईमानदार व्यापारी से मैंने कहा था कि नया वर्ष सुखमय हो तो वह उसी दिन से मुनाफाखोरी करने लगा। एक पत्रकार के लिए मैंने शुभकामना व्यक्त की तो वह 'ब्लैकमेलिंग' करने लगा। एक लेखक से मैंने कह दिया कि नया वर्ष तुम्हारे लिए सुखदाई हो तो वह लिखना छोड़कर रेडियो पर नौकर हो गया। एक पहलवान से मैंने कह दिया कि बहादुर तुम्हारा नया साल सुखमय हो तो वह जुए का फड़ चलाने लगा। एक अध्यापक को मैंने शुभकामना दी तो वह पैसे लेकर लड़कों को पास कराने लगा। एक नवयुवती के लिए सुख कामना की तो वह अपने प्रेमी के साथ भाग गई। एक एम.एल.ए. के लिए मैंने शुभकामना व्यक्त कर दी तो वह पुलिस से मिलकर घूस खाने लगा।

साधो, मुझे तुम्हें नए वर्ष की शुभकामना देने में इसीलिए डर लगता है। एक तो ईमानदार आदमी को सुख देना किसी के वश की बात नहीं हैं। ईश्वर तक के नहीं। मेरे कह देने से कुछ नहीं होगा। अगर मेरी शुभकामना सही होना ही है, तो तुम साधुपन छोड़कर न जाने क्या-क्या करने लगेंगे। तुम गांजा-शराब का चोर-व्यापार करने लगोगे। आश्रम में गांजा पिलाओगे और जुआ खिलाओगे। लड़कियां भगाकर बेचोगे। तुम चोरी करने लगोगे। तुम कोई संस्था खोलकर चंदा खाने लगोगे। साधो, सीधे रास्ते से इस व्यवस्था में कोई सुखी नहीं होता। तुम टेढ़े रास्ते अपनाकर सुखी होने लगोगे। साधो, इसी डर से मैं तुम्हें नए वर्ष के लिए कोई शुभकामना नहीं देता। कहीं तुम सुखी होने की कोशिश मत करने लगना।

घायल बसंत

कल बसन्तोत्सव था। कवि बसन्त के आगमन की सूचना पा रहा था--

प्रिय, फिर आया मादक बसन्त'।

मैंने सोचा, जिसे बसन्त के आने का बोध भी अपनी तरफ से काराना पड़े, उस प्रिय से तो शत्रु अच्छा। ऐसे नासमझ को प्रकृति - विज्ञान पढ़ायेंगे या उससे प्यार करेंगे। मगर कवि को न जाने क्यों ऐसा बेवकूफ पसन्द आता है ।

कवि मग्न होकर गा रहा था –

'प्रिय, फिर आया मादक बसन्त !'

पहली पंक्ति सुनते ही मैं समझ गया कि इस कविता का अन्त 'हा हन्त' से होगा, और हुआ। अन्त, सन्त, दिगन्त आदि के बाद सिवा 'हा हन्त' के कौन पद पूरा करता ? तुक की

यही मजबूरी है। लीक के छोर पर यही गहरा गढ़ा होता है। तुक की गुलामी करोगे तो आरम्भ चाहे 'बसन्त ' से कर लो, अन्त जरूर ' हा हन्त ' से होगा। सिर्फ कवि ऐसा नहीं करता। और लोग भी, सयाने लोग भी , इस चक्कर में होते है। व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में तुक पर तुक बिठाते चलते है। और 'वसन्त ' से शुरू करके 'हा हन्त' पर पहुंचते हैं। तुकें बराबर फ़िट बैठती हैं , पर जीवन का आवेग निकल भागता है। तुकें हमारा पीछा छोड़ ही नहीं रही हैं। हाल ही में हमारी समाजवादी सरकार के अर्थमन्त्री ने दबा सोना निकालने की जो अपील की , उसकी तुक शुध्द सर्वोदय से मिलायी -- 'सोना दबाने वालो , देश के लिए स्वेच्छा से सोना दे दो।' तुक उत्ताम प्रकार की थी; साँप तक का दिल नहीं दुखा। पर सोना चार हाथ और नीचे चला गया। आखिर कब हम तुक को तिलांजलि देंगे ? कब बेतुका चलने की हिम्मत करेंगे ?

कवि ने कविता समाप्त कर दी थी। उसका 'हा हन्त' आ गया था। मैंने कहा, 'धत्तोरे की !' 7 तुकों में ही टें बोल गया। राष्ट्रकवि इस पर कम -कम-कम 51 तुकें बॉधते। 9 तुकें तो उन्होंने 'चक्र' पर बांधी हैं। (देखो 'यशोधरा ' पृष्ठ 13) पर तू मुझे क्या बतायेगा कि बसन्त आ गया। मुझे तो सुबह से ही मालूम है। सबेरे वसन्त ने मेरा दरवाजा भी खटखटाया था। मैं रजाई ओढ़े सो रहा था। मैंने पूछा – “कौन?” जवाब आया-- " मैं वसन्त। " मैं घबड़ा उठा। जिस दूकान से सामान उधार लेता हूँ, उसके नौकर का नाम भी वसन्तलाल है। वह उधारी वसूल करने आया था। कैसा नाम है, और कैसा काम करना पड़ता है इसे ! इसका नाम पतझड़दास या तुषारपात होना था। वसन्त अगर उधारी वसूल करता फिरता है, तो किसी दिन आनन्दकर थानेदार मुझे गिरफ्तार करके ले जायेगा और अमृतलाल जल्लाद फॉसी पर टांग देगा !

वसन्तलाल ने मेरा मुहूर्त बिगाड़ दिया। इधर से कहीं ऋतुराज वसन्त निकलता होगा, तो वह सोचेगा कि ऐसे के पास क्या जाना जिसके दरवाजे पर सबेरे से उधारीवाले खड़े रहते हैं ! इस वसन्तलाल ने मेरा मौसम ही खराब कर दिया।

मैंने उसे टाला और फिर ओढ़कर सो गया। ऑखें झंप गयीं । मुझे लगा, दरवाजे पर फिर दस्तक हुई। मैंने पूछा --कौन? जवाब आया—“मैं वसन्त !” मैं खीझ उठा - " कह तो दिया कि फिर आना।" उधर से जवाब आया—“मै। बार-बार कब तक आता रहूंगा ? मैं। किसी बनिये का नौकर नहीं हूं ; ऋतुराज वसन्त हूं। आज तुम्हारे द्वार पर फिर आया हूं और तुम फिर सोते मिले हो। अलाल , अभागे, उठकर बाहर तो देख। ठूंठों ने भी नव पल्लव पहिन रखे हैं। तुम्हारे सामने की प्रौढ़ा नीम तक नवोढ़ा से हाव -भाव कर रही है -- और बहुत भद्दी लग रही है।"

मैने मुंह उधाड़कर कहा-, "भई, माफ़ करना , मैंने तुम्हें पहचाना नहीं। अपनी यही विडम्बना है कि ऋतुराज वसन्त भी आये, तो लगता है , उधारी के तगादेवाला आया। उमंगें तो मेरे मन में भी हैं, पर यार, ठण्ड बहुत लगती है।" वह जाने के लिए मुड़ा। मैंने कहा, " जाते - जाते एक छोटा-सा काम मेरा करते जाना। सुना है तुम ऊबड़ -खाबड़ चेहरों को चिकना कर देते हो ; 'फेसलिफ्टिंग' के अच्छे कारीगर हो तुम। तो जरा यार, मेरी सीढ़ी ठीक करते जाना, उखड़ गयी है। "

उसे बुरा लगा। बुरा लगने की बात है। जो सुन्दरियों के चेहरे सुधारने का कारीगर है, उससे मैंने सीढ़ी सुधारने के लिए कहा। वह चला गया।

मैं उठा और शाल लपेटकर बाहर बरामदे में आया। हज़ारों सालों के संचित संस्कार मेरे मन पर लदे हैं ; टनों कवि - कल्पनाएं जमी हैं। सोचा, वसन्त है तो कोयल होगी ही । पर न कहीं कोयल दिखी न उसकी कूक सुनायी दी। सामने की हवेली के कंगूरे पर बैठा कौआ 'कांव-कांव' कर उठा। काला, कुरूप, कर्कश कौटा-- मेरी सौदर्य-भावना को ठेस लगी। मैंने उसे भगाने के लिए कंकड़ उठाया। तभी खयाल आया कि एक परम्परा ने कौढ को भी प्रतिष्ठा दे दी है। यह विरहणी को प्रियतम के आगमन का सन्देसा देने वाला माना जाता है। सोचा , कहीं यह आसपास की किसी विरहणी को प्रिय के आने का सगुन न बता रहा हो। मै। विरहणियों के रास्ते में कभी नहीं आता ; पतिव्रताओं से तो बहुत डरता हूं। मैंने कंकड़ डाल दिया। कौआ फिर बोला। नायिका ने सोने से उसकी चोंच मढ़ाने का वायदा कर दिया होगा। शाम की गाड़ी से अगर नायक दौरे से वापिस आ गया , तो कल नायिका बाजार से आनेवाले सामान की जो सूची उसके हाथ में देगी, उसमें दो तोले सोना भी लिखा होगा। नायक पूछेगा , "प्रिये, सोना तो अब काला बाजार में मिलता है। लेकिन अब तुम सोने का करोगी क्या?" नायिका लजाकर कहेगी , " उस कौए की चोंच मढ़ाना है, जो कल सेबेरे तुम्हारे आने का सगुन बता गया था।" तब नायक कहेगा, " प्रिय, तुम बहुत भोली हो। मेरे दौरे का कार्यक्रम यह कौआ थेड़े ही बनाता है; वह कौआ बनाता है जिसे हम 'बड़ा साहब' कहते हैं। इस कलूटे की चोंच सोने से क्यों मढ़ाती हो? हमारी दुर्दशा का यही तो कारण है कि तमाम कौए सोने से चोंच मढ़ाये हैं, और इधर हमारे पास हथियार खरीदने को सोना नहीं हैं। हमें तो कौओं की चोंच से सोना खरोंच लेना है। जो आनाकानी करेंगे, उनकी चोंच काटकर सोना निकाल लेंगे। प्रिये, वही बड़ी ग़लत परम्परा है, जिसमें हंस और मोर की चोंच तो नंगी रहे, पर कौए की चोंच सुन्दरी खुद सोना मढ़े।" नायिका चुप हो जायेगी। स्वर्ण - नियन्त्रण कानून से सबसे ज्यादा नुकसान कौओं और विरहणियों का हुआ है। अगर कौए ने 14 केरेट के सोने से चोंच मढ़ाना स्वीकार नहीं

किया, तो विरहणी को प्रिय के आगमन की सूचना कौन देगा? कौआ फिर बोला। मैं इससे युगों से घृणा करता हूं ; तब से, जब इसने सीता के पांव में चोंच मारी थी। राम ने अपने हाथ से फूल चुनकर, उनके आभूषण बनाकर सीता को पहनाये। इसी समय इन्द्र का बिगड़ैल बेटा जयन्त आवारागर्दी करता वहां आया और कौआ बनकर सीता के पांव में चोंच मारने लगा। ये बड़े आदमी के बिगडैल लड़के हमेशा दूसरों का प्रेम बिगाड़ते हैं। यह कौआ भी मुझसे नाराज हैं , क्योंकि मैंने अपने घर के झरोखों में गौरैयों को घोंसले बना लेने दिये हैं। पर इस मौसम में कोयल कहां है ? वह अमराई में होगी। कोयल से अमराई छूटती नहीं है, इसलिए इस वसन्त में कौए की बन आयी है। वह तो मौक़ापरस्त है ; घुसने के लिए पोल ढूंढता है। कोयल ने उसे जगह दे दी है। वह अमराई की छाया में आराम से बैठी है। और इधर हर ऊंचाई पर कौआ बैठा 'कॉव-कॉव' कर रहा है। मुझे कोयल के पक्ष में उदास पुरातन प्रेमियों की आह भी सुनायी देती है, ' हाय, अब वे अमराइयां यहां कहां है कि कोयलें बोलें। यहां तो ये शहर बस गये हैं, और कारखाने बन गये है।' मैं कहता हूं कि सर्वत्र अमराइयां नहीं है, तो ठीक ही नहीं हैं। आखिर हम कब तक जंगली बने रहते? मगर अमराई और कुंज और बगीचे भी हमें प्यारे हैं। हम कारखाने को अमराई से घेर देंगे और हर मुहल्ले में बगीचा लगा देंगे। अभी थोड़ी देर है। पर कोयल को धीरज के साथ हमारा साथ तो देना था। कुछ दिन धूप तो हमारे साथ सहना था। जिसने धूप में साथ नही दिया , वह छाया कैसे बंटायेगी ? जब हम अमराई बना लेंगे , तब क्या वह उसमें रह सकेगी? नहीं, तब तक तो कौए अमराई पर क़ब्जा कर लेंगे। कोयल को अभी आना चाहिए। अभी जब हम मिट्टी खोदें , पानी सींचे और खाद दें, तभी से उसे गाना चाहिए। मैं बाहर निकल पड़ता हूं। चौराहे पर पहली बसन्ती साड़ी दिखी। मैं उसे जानता हूं। यौवन की एड़ी दिख रही है -- वह जा रहा है -- वह जा रहा है। अभी कुछ महीने पहले ही शादी हुई है। मैं तो कहता आ रहा था कि चाहे कभी ले, 'रूखी री यह डाल वसन वासन्ती लेगी' - (निराला)। उसने वसन वासन्ती ले लिया। कुछ हजार में उसे यह बूढा हो रहा पति मिल गया। वह भी उसके साथ है। वसन्त का अन्तिम चरण और पतझड़ साथ जा रहे हैं। उसने मांग में बहुत -सा सिन्दूर चुपड़ रखा है। जिसकी जितनी मुश्किल से शादी होती है, वह बेचारी उतनी ही बड़ी मांग भरती है। उसने बड़े अभिमान से मेरी तरफ देखा। फिर पति को देखा। उसकी नजर में ठसक और ताना है, जैसे अंगूठा दिखा रही है कि ले, मुझे तो यह मिल ही गया। मगर यह क्या? वह ठण्ड से कांप रही है और 'सीसी' कर रहीं है। वसन्त में वासन्ती साड़ी को कंपकंपी छूट रही है।

यह कैसा वसन्त है जो शीत के डर से कांप रहा है? क्या कहा था विद्यापति ने-- ' सरस वसन्त समय भल पाओलि दछिन पवन बहु धीरे ! नहीं मेरे कवि, दक्षिण से मलय पवन

नहीं बह रहा। यह उत्तार से बर्फ़ीली हवा आ रही है। हिमालय के उस पार से आकर इस बर्फ़ीली हवा ने हमारे वसन्त का गला दबा दिया है। हिमालय के पार बहुत- सा बर्फ बनाया जा रहा है जिसमें सारी मनुष्य जाति को मछली की तरह जमा कर रखा जायेगा। यह बड़ी भारी साजिश है बर्फ की साजिश ! इसी बर्फ क़ी हवा ने हमारे आते वसन्त को दबा रखा है। यों हमें विश्वास है कि वसन्त आयेगा। शेली ने कहा है, 'अगर शीत आ गयी है, तो क्या वसन्त बहुत पीछे होगा? वसन्त तो शीत के पीछे लगा हुआ ही आ रहा है। पर उसके पीछे गरमी भी तो लगी है। अभी उत्तार से शीत -लहर आ रही है तो फिर पश्चिम से लू भी तो चल सकती है। बर्फ और आग के बीच में हमारा वसन्त फॅंसा है। इधर शीत उसे दबा रही है और उधर से गरमी। और वसन्त सिकुड़ता जा रहा है।

मौसम की मेहरबानी पर भरोसा करेंगे, तो शीत से निपटते-निपटते लू तंग करने लगेगी। मौसम के इन्तजार से कुछ नहीं होगा। वसन्त अपने आप नहीं आता ; उसे लाया जाता है। सहज आनेवाला तो पतझड़ होता है, वसन्त नहीं। अपने आप तो पत्ते झड़ते हैं। नये पत्ते तो वृक्ष का प्राण-रस पीकर पैदा होते हैं। वसन्त यों नहीं आता। शीत और गरमी के बीच से जो जितना वसन्त निकाल सके, निकाल लें। दो पाटों के बीच में फंसा है, देश का वसन्त। पाट और आगे खिसक रहे हैं। वसन्त को बचाना है तो ज़ोर लगाकर इन दोनों पाटों को पीछे ढकेलो - इधर शीत को, उधर गरमी को। तब बीच में से निकलेगा हमारा घायल वसन्त।

संस्कृति

भूखा आदमी सड़क किनारे कराह रहा था । एक दयालु आदमी रोटी लेकर उसके पास पहँचा और उसे दे ही रहा था कि एक-दूसरे आदमी ने उसका हाथ खींच लिया । वह आदमी बड़ा रंगीन था ।

पहले आदमी ने पूछा, "क्यों भाई, भूखे को भोजन क्यों नहीं देने देते ?"

रंगीन आदमी बोला, "ठहरो, तुम इस प्रकार उसका हित नहीं कर सकते । तुम केवल उसके तन की भूख समझ पाते हो, मैं उसकी आत्मा की भूख जानता हूँ । देखते नहीं हो, मनुष्य-शरीर में पेट नीचे है और हृदय ऊपर । हृदय की अधिक महत्ता है ।"

पहला आदमी बोला, "लेकिन उसका हृदय पेट पर ही टिका हुआ है । अगर पेट में भोजन नहीं गया तो हृदय की टिक-टिक बंद नहीं हो जायेगी !"

रंगीन आदमी हँसा, फिर बोला, "देखो, मैं बतलाता हूँ कि उसकी भूख कैसे बुझेगी !"

यह कहकर वह उस भूखे के सामने बाँसुरी बजाने लगा । दूसरे ने पूछा, "यह तुम क्या कर रहे हो, इससे क्या होगा ?"

रंगीन आदमी बोला, "मैं उसे संस्कृति का राग सुना रहा हूँ । तुम्हारी रोटी से तो एक दिन के लिए ही उसकी भूख भागेगी, संस्कृति के राम से उसकी जनम-जनम की भूख भागेगी ।"

वह फिर बाँसूरी बजाने लगा ।

और तब वह भूखा उठा और बाँसूरी झपटकर पास की नाली में फेंक दी ।

बारात की वापसी

बारात में जाना कई कारण से टालता हूँ। मंगल कार्यों में हम जैसी चढ़ी उम्र के कुँवारों का जाना अपशकुन है। महेश बाबू का कहना है, हमें मंगल कार्यों से विधवाओं की तरह ही दूर रहना चाहिये। किसी का अमंगल अपने कारण क्यों हो ! उन्हें पछतावा है कि तीन साल पहले जिनकी शादी में वह गये थे, उनकी तलाक की स्थिति पैदा हो गयी है। उनका यह शोध है कि महाभारत का युद्ध न होता, अगर भीष्म की शादी हो गयी होती। और अगर कृष्णमेनन की शादी हो गयी होती, तो चीन हमला न करता।

सारे युद्ध प्रौढ़ कुंवारों के अहं की तुष्टि के लिए होते हैं। 1948 में तेलंगाना में किसानों का सशस्त्र विद्रोह देश के वरिष्ठ कुंवारे विनोवस भावे के अहं की तुष्टि के लिए हुआ था। उनका अहं भूदान के रूप में तुष्ट हुआ।

....

अपने पुत्र की सफल बारात से प्रसन्न मायराम के मन में उस दिन नागपुर में बड़ा मौलिक विचार जागा था। कहने लगे, " बस, अब तुमलोगों की बारात में जाने की इच्छा है। " हम लोगों ने कहा - '

अब किशोरों जैसी बारात तो होगी नही। अब तो ऐसी बारात ऐसी होगी- किसी को भगा कर लाने के कारण हथकड़ी पहने हम होंगे और पीछे चलोगे तुम जमानत देने वाले। ऐसी बारात होगी। चाहो तो बैण्ड भी बजवा सकते हो।"

....

विवाह का दृश्य बड़ा दारुण होता है। विदा के वक्त औरतों के साथ मिलकर रोने को जी करता है। लड़की के बिछुड़ने के कारण नहीं, उसके बाप की हालत देखकर लगता है, इस देश की आधी ताकत लड़कियों की शादी करने मे जा रही है। पाव ताकत छिपाने मे जा रही है - शराब पीकर छिपाने में, प्रेम करके छिपाने में, घूस लेकर छिपाने में ... बची पाव ताकत से देश का निर्माण हो रहा है, - तो जितना हो रहा है, बहुत हो रहा है। आखिर एक चौथाई ताकत से कितना होगा।

यह बात मैंने उस दिन एक विश्वविद्यालय के छात्रसंघ के वार्षिकोत्सव में कही थी। कहा था, "तुम लोग क्रांतिकारी तरुण-तरुणियां बनते हो। तुम इस देश की आधी ताकत को बचा सकते हो। ऐसा करो जितनी लड़कियां विश्वविद्यालय में हैं, उनसे विवाह कर डालो। अपने बाप को मत बताना। वह दहेज मांगने लगेगा। इसके बाद जितने लड़के बचें, वे एक-दूसरे की बहन से शादी कर लें। ऐसा बुनियादी क्रांतिकारी काम कर डालो और फिर जिस सिगड़ी को जमीन पर रखकर तुम्हारी मां रोटी बनाती है, उसे टेबिल पर रख दो, जिससे तुम्हारी पत्नी सीधी खड़ी होकर रोटी बना सके। बीस-बाईस सालों में सिगड़ी ऊपर नहीं रखी जा सकी और न झाड़ू में चार फुट का डंडा बांधा जा सका। अब तक तुम लोगों ने क्या खाक क्रांति की है।"

छात्र थोड़े चौंके। कुछ ही-ही करते भी पाये गये। मगर कुछ नहीं।

एक तरुण के साथ सालों मेहनत करके मैंने उसके खयालात संवारे थे। वह शादी के मंडप में बैठा तो ससुर से बच्चे की तरह मचलकर बोला, "बाबूजी, हम तो वेस्पा लेंगे, वेस्पा के बिना कौर नहीं उठायेंगे।" लड़की के बाप का चेहरा फक। जी हुआ, जूता उतारकर पांच इस लड़के को मारूं और पच्चीस खुद अपने को। समस्या यों सुलझी कि लड़की के बाप ने साल भर में वेस्पा देने का वादा किया, नेग के लिए बाजार से वेस्पा का खिलौना मंगाकर थाली में रखा, फिर सबा रुपया रखा और दामाद को भेंट किया। सबा रुपया तो

मरते वक्त गोदान के निमित्त दिया जाता है न। हां, मेरे उस तरुण दोस्त की प्रगतिशीलता का गोदान हो रहा था।

बारात यात्रा से मैं बहुत घबराता हूँ , खासकर लौटते वक्त जब बाराती बेकार बोझ हो जाता है । अगर जी भर दहेज न मिले, तो वर का बाप बरातियों को दुश्मन समझता है। मैं सावधानी बरतता हूँ कि बारात की विदा के पहले ही कुछ बहाना करके किराया लेकर लौट पड़ता हूँ।

एक बारात की वापसी मुझे याद है।

हम पांच मित्रों ने तय किया कि शाम ४ बजे की बस से वापस चलें। पन्ना से इसी कम्पनी की बस सतना के लिये घण्टे-भर बाद मिलती है, जो जबलपुर की ट्रेन मिला देती है। सुबह घर पहुंच जायेंगे। हममें से दो को सुबह काम पर हाज़िर होना था, इसलिये वापसी का यही रास्ता अपनाना ज़रूरी था। लोगों ने सलाह दी कि समझदार आदमी इस शाम वाली बस से सफ़र नहीं करते। क्या रास्ते में डाकू मिलते हैं? नहीं बस डाकिन है।

बस को देखा तो श्रद्धा उभर पड़ी। खूब वयोवृद्ध थी। सदीयों के अनुभव के निशान लिये हुए थी। लोग इसलिए सफ़र नहीं करना चाहते कि वृद्धावस्था में इसे कष्ट होगा। यह बस पूजा के योग्य थी। उस पर सवार कैसे हुआ जा सकता है!

बस-कम्पनी के एक हिस्सेदार भी उसी बस से जा रहे थे। हमनें उनसे पूछा-यह बस चलती है? वह बोले-चलती क्यों नहीं है जी! अभी चलेगी। हमनें कहा-वही तो हम देखना चाहते हैं। अपने-आप चलती है यह? उन्होंने कहा-हां जी और कैसे चलेगी?

गज़ब हो गया। ऐसी बस अपने-आप चलती है!

हम आगा-पीछा करने लगे। पर डाक्टर मित्र ने कहा-डरो मत, चलो! बस अनुभवी है। नई-नवेली बसों से ज़्यादा विशवनीय है। हमें बेटों की तरह प्यार से गोद में लेकर चलेगी। हम बैठ गये। जो छोड़ने आए थे, वे इस तरह देख रहे थे, जैसे अंतिम विदा दे रहे हैं। उनकी आखें कह रही थी -

आना-जाना तो लगा ही रहता है। आया है सो जायेगा - राजा, रंक, फ़कीर। आदमी को कूच करने के लिए एक निमित्त चाहिए।

इंजन सचमुच स्टार्ट हो गया। ऐसा लगा, जैसे सारी बस ही इंजन है और हम इंजन के भीतर बैठे हैं। कांच बहुत कम बचे थे। जो बचे थे, उनसे हमें बचना था। हम फौरन खिड़की से दूर सरक गये। इंजन चल रहा था। हमें लग रहा था हमारी सीट के नीचे इंजन है।

बस सचमुच चल पड़ी और हमें लगा कि गांधीजी के असहयोग और सविनय अवज्ञा आंदलनों के वक्त अवश्य जवान रही होगी। उसे ट्रेनिंग मिल चुकी थी। हर हिस्सा दुसरे से असहयोग कर रहा था। पूरी बस सविनय अवज्ञा आंदोलन के दौर से गुज़र रही थी। सीट का बॉडी से असहयोग चल रहा था। कभी लगता, सीट बॉडी को छोड़ कर आगे निकल गयी। कभी लगता कि सीट को छोड़ कर बॉडी आगे भागे जा रही है। आठ-दस मील चलने पर सारे भेद-भाव मिट गए। यह समझ में नहीं आता था कि सीट पर हम बैठे हैं या सीट हमपर बैठी है।

एकाएक बस रूक गयी। मालूम हुआ कि पेट्रोल की टंकी में छेद हो गया है। ड्राइवर ने बाल्टी में पेट्रोल निकाल कर उसे बगल में रखा और नली डालकर इंजन में भेजने लगा। अब मैं उम्मीद कर रहा था कि थोड़ी देर बाद बस कम्पनी के हिस्सेदार इंजन को निकालकर गोद में रख लेंगे और उसे नली से पेट्रोल पिलाएंगे, जैसे मां बच्चे के मुंह में दूध की शीशी लगाती है।

बस की रफ्तार अब पन्द्रह-बीस मील हो गयी थी। मुझे उसके किसी हिस्से पर भरोसा नहीं था। ब्रेक फेल हो सकता है, स्टीयरींग टूट सकता है। प्रकृति के दृश्य बहुत लुभावने थे। दोनों तरफ हरे-हरे पेड़ थे, जिन पर पंछी बैठे थे। मैं हर पेड़ को अपना दुश्मन समझ रहा था। जो भी पेड़ आता, डर लगता कि इससे बस टकराएगी। वह निकल जाता तो दूसरे पेड़ का इन्तज़ार करता। झील दिखती तो सोचता कि इसमें बस गोता लगा जाएगी।

एकाएक फिर बस रूकी। ड्राइवर ने तरह-तरह की तरकीबें कीं, पर वह चली नहीं। सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू हो गया था। कम्पनी के हिस्सेदार कह रहे थे - बस तो फर्स्ट क्लास है जी! ये तो इत्तफाक की बात है। क्षीण चांदनी में वृक्षों की छाया के नीचे वह बस बड़ी दयनीय लग रही थी।

लगता, जैसे कोई वृद्धा थककर बैठ गयी हो। हमें ग्लानी हो रही थी कि इस बेचारी पर लदकर हम चले आ रहे हैं। अगर इसका प्राणांत हो गया तो इस बियाबान में हमें इसकी अन्त्येष्टी करनी पड़ेगी।

हिस्सेदार साहब ने इंजन खोला और कुछ सुधारा। बस आगे चली। उसकी चाल और कम हो गयी थी।

धीरे-धीरे वृद्धा की आखों की ज्योति जाने लगी। चांदनी में रास्ता टटोलकर वह रेंग रही थी। आगे या पीछे से कोई गाड़ी आती दिखती तो वह एकदम किनारे खड़ी हो जाती और कहती - निकल जाओ बेटी! अपनी तो वह उम्र ही नहीं रही।

एक पुलिया के उपर पहुंचे ही थे कि एक टायर फिस्स करके बैठ गया। बस बहुत ज़ोर से हिलकर थम गयी। अगर स्पीड में होती तो उछल कर नाले में गिर जाती। मैंने उस कम्पनी के हिस्सेदार की तरफ श्रद्धा भाव से देखा। वह टायरों क हाल जानते हैं, फिर भी जान हथेली पर ले कर इसी बस से सफर करते हैं। उत्सर्ग की ऐसी भावना दुर्लभ है। सोचा, इस आदमी के साहस और बलिदान-भावना का सही उपयोग नहीं हो रहा है। इसे तो किसी क्रांतिकारी आंदोलन का नेता होना चाहिए। अगर बस नाले में गिर पड़ती और हम सब मर जाते, तो देवता बांहें पसारे उसका इन्तज़ार करते। कहते - वह महान आदमी आ रहा है जिसने एक टायर के लिए प्राण दे दिए। मर गया, पर टायर नहीं बदला।

दूसरा घिसा टायर लगाकर बस फिर चली। अब हमने वक्त पर पन्ना पहुंचने की उम्मीद छोड़ दी थी। पन्ना कभी भी पहुंचने की उम्मीद छोड़ दी थी - पन्ना, क्या, कहीं भी, कभी भी पहुंचने की उम्मीद छोड़ दी थी। लगता था, ज़िन्दगी इसी बस में गुज़ारनी है और इससे सीधे उस लोक की ओर प्रयाण कर जाना है। इस पृथ्वी पर उसकी कोई मंज़िल नहीं है। हमारी बेताबी, तनाव खत्म हो गये। हम बड़े इत्मीनान से घर की तरह बैठ गये। चिन्ता जाती रही। हंसी मज़ाक चालू हो गया।

ठण्ड बढ़ रही थी । खिड़कियाँ खुली ही थीं। डाक्टर ने कहा - ' गलती हो गयी। 'कुछ' पीने को ले

आता तो ठीक रहता । ' एक गाँव पर बस रुकी तो डाक्टर फौरन उतरा । ड्राइवर से बोला - 'जरा रोकना ! नारियल ले आऊँ । आगे मढ़िया पर फोड़ना है । डाक्टर झोपड़ियों के पीछे गया और देशी शराब की बोतल ले आया । छागलों मे भर कर हम लोगों ने पीना शुरु किया ।

इसके बाद किसी कष्ट का अनुभव नहीं हुआ। पन्ना से पहले ही सारे मुसाफिर उतर चुके थे । बस कम्पनी के हिस्सेदार शहर के बाहर ही अपने घर पर उतर गये। बस शहर मे अपने ठिकाने पर रुकी। कम्पनी के दो मालिक रजाइयों मे दुबके बैठे थे। रात का एक बजा था। हम पाँचों उतरे। मैं सड़क के किनारे खड़ा रहा। डाक्टर भी मेरे पास खड़ा हो कर बोतल से अंतिम घूँट लेने लगा। बाकि तीन मित्र बस-मालिकों पर झपटे। उनकी गर्म डाँट हम सुन रहे थे। पर वे निराश लौटे। बस-मालिकों ने कह दिया था, सतना की बस तो चार- पाँच घण्टे पहले जा चुकी थी। अब लौटती होगी। अब तो बस सवेरे ही मिलेगी।

आसपास देखा, सारी दुकानें, होटल बन्द। ठण्ड कड़ाके की। भूख भी खूब लग रही थी। तभी डाक्टर बस-मालिकों के पास गया। पाँचेक मिनट मे उनके साथ लौटा तो बदला हुआ था। बड़े अदब से मुझसे कहने लगा," सर, नाराज़ मत होइए। सरदार जी कुछ इंतजाम करेंगे। सर,सर उन्हें अफ़सोस है कि आपको तक़लीफ़ हुई। "

अभी डाक्टर बेतकुल्लफी से बात कर रहा था और अब मुझे 'सर' कह रहा है। बात क्या है? कही ठर्रा ज्यादा असर तो नहीं कर गया। मैने कहा, "यह तुमने क्या 'सर-सर' लगा रखी है ? "

उसने वैसे ही झुक कर कहा, " सर, नाराज़ मत होइए ! सर, कुछ इंतजाम हुआ जाता है। "

मुझे तब भी कुछ समझ में नही आया। डाक्टर भी परेशान था कि मैं कुछ समझ क्यों नही रहा हूँ। वह मुझे अलग ले गया और समझाया, " मैने इन लोगों से कहा है कि तुम संसद सदस्य हो। इधर जांच करने आए हो।मैं एक क्लर्क हूँ, जिसे साहब ने एम. पी. को सतना पहुँचाने के लिए भेजा है। मैने इनसे कहा कि सरदारजी, मुझ गरीब की तो गर्दन कटेगी ही, आपकी भी लेवा-देई हो जायेगी। वह स्पेशल बस से सतना भेजने का इंतजाम कर देगा। ज़रा थोड़ा एम. पी. पन तो दिखाओ। उल्लू की तरह क्यों पेश आ रहे हो। "

मैं समझ गया कि मेरी काली शेरवानी काम आ गयी है। यह काली शेरवानी और ये बड़े बाल मुझे कोई रुप दे देते हैं। नेता भी दिखता हूँ, शायर भी और अगर बाल सूखे -बिखरे हों तो जुम्मन शहनाईवाले का भी धोखा हो जाता है।

मैने मिथ्याचार का आत्मबल बटोरा और लौटा तो ठीक संसद सदस्य की तरह। आते ही सरदारजी से रोब से पूछा, " सरदारजी, आर. टी. ओ. से कब तक इस बस को चलाने का सौदा हो गया है? "

सरदारजी घबरा उठे। डाक्टर खुश कि मैने फर्स्ट क्लास रोल किया है।

रोबदार संसद सदस्य का एक वाक्य काफ़ी है, यह सोंचकर मैं दूर खड़े होकर सिगरेट पीने लगा। सरदारजी ने वहीं मेरे लिये कुर्सी डलवा दी। वह डरे हुए थे और डरा हुआ मैं भी था। मेरा डर यह था कि कहीं पूछताछ होने लगी कि मैं कौन संसद सदस्य हूँ तो क्या कहूँगा। याद आया कि अपने मित्र महेशदत्त मिश्र का नाम धारण कर लूँगा। गाँधीवादी होने के नाते, वह थोड़ा झूठ बोलकर मुझे बचा ही लेंगे।

मेरा आत्मविश्वास बहुत बढ़ गया। झूठ यदि जम जाये तो सत्य से ज्यादा अभय देता है। मैं वहीं बैठे-बैठे डाक्टर से चीखकर बोला, " बाबू , यहाँ क्या कयामत तक बैठे रहना पड़ेगा? इधर कहीं फोन हो तो जरा कलेक्टर को इत्तिला कर दो। वह ग़ाड़ी का इंतजाम कर देंगे। "

डाक्टर वहीं से बोला, " सर, बस एक मिनट! जस्ट ए मिनट सर !" थोड़ी देर बाद सरदारजी ने एक नयी बस निकलवायी। मुझे सादर बैठाया गया। साथियों को बैठाया। बस चल पड़ी।

मुझे एम. पी. पन काफी भाड़ी पड़ रहा था। मैं दोस्तों के बीच अजनबी की तरह अकड़ा बैठा था। डाक्टर बार बार 'सर' कहता था और बस का मालिक 'हुज़ूर'।

सतना में जब रेलवे के मुसाफिरखाने मे पहुँचे तब डाक्टर ने कहा, " अब तीन घण्टे लगातार तुम

मुझे 'सर' कहो। मेरी बहुत तौहीन हो चुकी है।"

....

ग्रीटिंग कार्ड और राशन कार्ड

मेरी टेबिल पर दो कार्ड पड़े हैं- इसी डाक से आया दिवाली ग्रीटिंग कार्ड और दुकान से लौटा राशन कार्ड. ग्रीटिंग कार्ड में किसी ने शुभेच्छा प्रगट की है कि मैं सुख और समृद्धि प्राप्त करूँ. अभी अपने शुभचिन्तक बने हुए हैं जो सुख दिए बिना चैन नहीं लेंगे. दिवाली पर कम से कम उन्हें याद तो आती है कि इस आदमी का सुखी होना अभी बकाया है. वे कार्ड भेज देते हैं कि हम तो सुखी हैं ही, अगर तुम भी हो जाओ, तो हमें फिलहाल कोई एतराज़ नहीं.

मेरा राशन कार्ड मेरे सुख की कामना कर रहा है. मगर राशन कार्ड बताता है कि इस हफ़्ते से गेहूँ की मात्रा आधी हो गयी है. राशन कार्ड मे ग्रीटिंग कार्ड को काट दिया. ऐसा तमाचा मारा कि खूबसूरत ग्रीटिंग कार्डजी के कोमल कपोल रक्तिम हो गए.शुरु से ही राशन कार्ड इस ग्रीटिंग कार्ड की ओर गुर्राकर देख रहा था. जैसे ही मैं ग्रीटिंग कार्ड पढ़कर खुश हुआ, राशन कार्ड ने उसकी गर्दन दबाकर कहा- क्यों बे साले, ग्रीटिंग कार्ड के बच्चे, तू इस आदमी को सुखी करना चाहता है? जा, इसका गेहूँ आधा कर दिया गया. बाकी काला-बाज़ार से खरीदे या भूखा रहे.

बेचारा ग्रीटिंग कार्ड दीनता से मेरी ओर देख रहा है. मैं क्या करूँ? झूठों की रक्षा का ठेका मुझे थोड़े ही मिला है. जिन्हें मिला है उनके सामने हाथ जोड़ो. मेरे राशन कार्ड को तेरी झूठ बर्दाश्त नहीं हुई. इन हालात में सुख का झूठी आशा लेकर तू क्यों आया? ग्रीटिंग कार्ड राष्ट्रसंघ के शान्ति प्रस्तावों की तरह सुन्दर पर प्रभावहीन है. राशन कार्ड खुरदरा और बदसूरत है, पर इसमें अनाज है. मेरे लिए यही सत्य है. और इस रंगीन चिकनाहट में सत्यहीन औपचारिक शुभेच्छा है. ग्रीटिंग कार्ड सत्य होता अगर इसके साथ एक राशन कार्ड भी भेजा गया होता और लिखा होता- हम चाहते हैं कि तुम सुख प्राप्त करो. इस हेतु हम एक मरे हुए आदमी के नाम से जाली राशन कार्ड बनवाकर भेज रहे हैं. जब तक धाँधली चले सस्ता अनाज लेते जाना और सुखी रहना. पकड़े जाने पर हमारा नाम मत बताना. संकट के वक्त शुभचिंतक का नाम भूल जाना चाहिए.

मित्रों से तो मैं कहना चाहता हूँ कि ये कार्ड ने भेजें. शुभकामना इस देश में कारगर नहीं हो रही हैं. यहाँ गोरक्षा का जुलूस सात लाख का होता है और मनुष्य रक्षा का सिर्फ एक लाख का. दुनिया भर

में शुभकामना बोझ हो गयी है. पोप की शुभकामना से एक बम कम नहीं गिरता. मित्रों की ही इच्छा से कोई सफल, सुखी और समृद्ध कैसे हो जाएगा? सफलता के महल का प्रवेश द्वार बंद है. इसमें पीछे के नाबदान से ही घुसा जा सकता है. जिन्हें घुसना है नाक पर रुमाल रखकर घुस जाते हैं. पास ही इत्र सने रुमालों के ठेले खड़े हैं. रुमाल खरीदो, नाक पर रखो और नाबदान में से घुस जाओ सफलता और सुख के महल में. एक आदमी खड़ा देख रहा है. कोई पूछता है- घुसते क्यों नहीं? वह कहता है- एक नाक होती तो घुस जाते. हमारा तो हर रोम एक नाक है. कहाँ-कहाँ रुमाल लपेटें.

एक डर भी है. सफलता, सुख और समृद्धि प्राप्त भी हो जाए, तो पता नहीं कितने लोग बुरा मान जाएँ. संकट में तो शत्रु भी मदद कर देते हैं. मित्रता की सच्ची परीक्षा संकट में नहीं, उत्कर्ष में होती है. जो मित्र के उत्कर्ष को बर्दाश्त कर सके, वही सच्चा मित्र होता है. संकट में तपी हुई मित्रता उत्कर्ष में खोटी निकलती मैंने देखी है. एक बेचारे की चार कविताएँ छप गईं, तो चार मित्र टूट गए. आठ छपने पर पूरे आठ टूट गये. दो कवि सम्मेलनों में जमने से एक स्थानीय कवि के कवि-मित्र रूठ गए. तीसरे कवि सम्मेलन में जब वह ‘हूट’ हुआ, तब जाकर मित्रता अपनी जगह लौटी.

ग्रीटिंग कार्डों पर अपना भरोसा नहीं. 20 सालों से इस देश को ग्रीटिंग कार्डों के सहारे चलाया गया है. अम्बार लग गए हैं. हर त्योहार पर देशवासियों को ग्रीटिंग कार्ड दिए जाते हैं- 15 अगस्त और 26 जनवरी पर, संसद के अधिवेशन पर, पार्टी के सम्मेलन पर. बढ़िया सुनहले रंगों के मीठे शब्दों के ग्रीटिंग्स- देशवासियों, बस इस साल तुम सुखी और समृद्ध हो जाओ. ग्रीटिंग कार्डों के ढेर लगे हैं, मगर राशन कार्ड छोटा होता जाता है.

हरिशंकर परसाई के लेखन के उद्धरण

व्यंग्य लेखन को साहित्य में प्रतिष्ठा दिलाने में परसाई जी का योगदान अमूल्य है.आजादी के बाद के भारतीय समाज की स्थिति का आईना है उनका लेखन.उनकी पक्षधरता आम आदमी की तरफ है.

परसाईजी का लेखन कसौटी भी है उन लोगों के लिये जो अपने को व्यंग्य लेखक मानते हैं.

1.इस देश के बुद्धिजीवी शेर हैं,पर वे सियारों की बरात में बैंड बजाते हैं.

2.जो कौम भूखी मारे जाने पर सिनेमा में जाकर बैठ जाये ,वह अपने दिन कैसे बदलेगी!

3.अच्छी आत्मा फोल्डिंग कुर्सी की तरह होनी चाहिये.जरूरत पडी तब फैलाकर बैठ गये,नहीं तो मोडकर कोने से टिका दिया.

4.अद्भुत सहनशीलता और भयावह तटस्थता है इस देश के आदमी में.कोई उसे पीटकर पैसे छीन ले तो वह दान का मंत्र पढने लगता है.

5.अमरीकी शासक हमले को सभ्यता का प्रसार कहते हैं.बम बरसते हैं तो मरने वाले सोचते है,सभ्यता बरस रही है.

6.चीनी नेता लडकों के हुल्लड़ को सांस्कृतिक क्रान्ति कहते हैं, तो पिटने वाला नागरिक सोचता है मैं सुसंस्कृत हो रहा हूं.

7.इस कौम की आधी ताकत लड़कियों की शादी करने में जा रही है.

8.अर्थशास्त्र जब धर्मशास्त्र के ऊपर चढ़ बैठता है तब गोरक्षा आन्दोलन के नेता जूतों की दुकान खोल लेते हैं.

9.जो पानी छानकर पीते हैं, वे आदमी का खून बिना छना पी जाते हैं .

10.नशे के मामले में हम बहुत ऊंचे हैं. दो नशे खास हैं--हीनता का नशा और उच्चता का नशा, जो बारी-बारी से चढ़ते रहते हैं.

11.शासन का घूंसा किसी बडी और पुष्ट पीठ पर उठता तो है पर न जाने किस चमत्कार से बडी पीठ खिसक जाती है और किसी दुर्बल पीठ पर घूंसा पड़ जाता है.

12.मैदान से भागकर शिविर में आ बैठने की सुखद मजबूरी का नाम इज्जत है.इज्जतदार आदमी ऊंचे झाड़ की ऊंची टहनी पर दूसरे के बनाये घोसले में अंडे देता है.

13.बेइज्जती में अगर दूसरे को भी शामिल कर लो तो आधी इज्जत बच जाती है.

14.मानवीयता उन पर रम के किक की तरह चढती - उतरती है,उन्हें मानवीयता के फिट आते हैं.

15.कैसी अद्भुत एकता है.पंजाब का गेहूं गुजरात के कालाबाजार में बिकता है और

मध्यप्रदेश का चावल कलकत्ता के मुनाफाखोर के गोदाम में भरा है. देश एक है. कानपुर का ठग मदुरई में ठगी करता है, हिन्दी भाषी जेबकतरा तमिलभाषी की जेब काटता है और रामेश्वरम का भक्त बद्रीनाथ का सोना चुराने चल पडा है. सब सीमायें टूट गयीं.

16.रेडियो टिप्पणीकार कहता है--'घोर करतल ध्वनि हो रही है.'मैं देख रहा हूं,नहीं हो रही है.हम सब लोग तो कोट में हाथ डाले बैठे हैं.बाहर निकालने का जी नहीं होत.हाथ अकड जायेंगे.लेकिन हम नहीं बजा रहे हैं फिर भी तालियां बज रही हैं.मैदान में जमीन पर बैठे वे लोग बजा रहे हैं ,जिनके पास हाथ गरमाने को कोट नहीं हैं.लगता है गणतन्त्र ठिठुरते हुये हाथों की तालियों पर टिका है.गणतन्त्र को उन्हीं हाथों की तालियां मिलती हैं,जिनके मालिक के पास हाथ छिपाने के लिये गर्म कपडा नहीं है.

17.मौसम की मेहरवानी का इन्तजार करेंगे,तो शीत से निपटते-निपटते लू तंग करने लगेगी.मौसम के इन्तजार से कुछ नहीं होता.वसंत अपने आप नहीं आता,उसे लाना पडता है.सहज आने वाला तो पतझड होता है,वसंत नहीं.अपने आप तो पत्ते झडते हैं.नये पत्ते तो वृक्ष का प्राण-रस पीकर पैदा होते हैं.वसंत यों नहीं आता.शीत और गरमी के बीच जो जितना वसंत निकाल सके,निकाल ले.दो पाटों के बीच में फंसा है देश वसंत.पाट और आगे खिसक रहे हैं.वसंत को बचाना है तो जोर लगाकर इन दो पाटों को पीचे ढकेलो-- इधर शीत को उधर गरमी को .तब बीच में से निकलेगा हमारा घायल वसंत.

18.सरकार कहती है कि हमने चूहे पकडने के लिये चूहेदानियां रखी हैं.एकाध चूहेदानी की हमने भी जांच की.उसमे घुसने के छेद से बडा छेद पीछे से निकलने के लिये है.चूहा इधर फंसता है और उधर से निकल जाता है.पिंजडे बनाने वाले और चूहे पकडने वाले चूहों से मिले हैं.वे इधर हमें पिंजडा दिखाते हैं और चूहे को छेद दिखा देते हैं.हमारे माथे पर सिर्फ चूहेदानी का खर्च चढ रहा है.

19.एक और बडे लोगों के क्लब में भाषण दे रहा था.मैं देश की गिरती हालत,मंहगाई ,गरीबी,बेकारी,भ्रष्टाचारपर बोल रहा था और खूब बोल रहा था.मैं पूरी पीडा से,गहरे आक्रोश से बोल रहा था .पर जब मैं ज्यादा मर्मिक हो जाता ,वे लोग तालियां पीटने लगते थे.मैंने कहा हम बहुत पतित हैं,तो वे लोग तालियां पीटने लगे.और मैं समारोहों के बाद रात को घर लौटता हूं तो सोचता रहता हूं कि जिस समाज के लोग शर्म की बात पर हंसे,उसमे क्या कभी कोई क्रन्तिकारी हो सकता है?होगा शायद पर तभी होगा जब शर्म की बात पर ताली पीटने वाले हाथ कटेंगे और हंसने वाले जबडे टूटेंगे .

20.निन्दा में विटामिन और प्रोटीन होते हैं.निन्दा खून साफ करती है,पाचन क्रिया ठीक करती है,बल और स्फूर्ति देती है.निन्दा से मांसपेशियां पुष्ट होती हैं.निन्दा पयरिया का तो सफल इलाज है.सन्तों को परनिन्दा की मनाही है,इसलिये वे स्वनिन्दा करके स्वास्थ्य अच्छा रखते हैं.

21.मैं बैठा-बैठा सोच रहा हूं कि इस सडक में से किसका बंगला बन जायेगा?...बडी इमारतों के पेट से बंगले पैदा होते मैंने देखे हैं.दशरथ की रानियों को यज्ञ की खीर खाने से पुत्र हो गये थे.पुण्य का प्रताप अपार है.अनाथालय से हवेली पैदा हो जाती है.

उखड़े खम्भे

*[कुछ साथियों के हवाले से पता चला कि कुछ साइटें बैन हो गयी हैं। पता नहीं यह कितना सच है लेकिन लोगों ने सरकार को कोसना शुरू कर दिया। अरे भाई,सरकार तो जो देश हित में ठीक लगेगा वही करेगी न! पता नहीं मेरी इस बात से आप कितना सहमत हैं लेकिन यह है सही बात कि सरकार हमेशा देश हित के लिये सोचती है। मैं शायद ठीक से अपनी बात न समझा सकूँ लेकिन मेरे पसंदीदा लेखक ,व्यंग्यकार **हरिशंकर परसाई** ने इसे अपने एक लेख उखड़े खम्भे में बखूबी बताया है।*

*यहां जानकारी के लिये बता दिया जाये कि भारत के प्रथम प्रधान मंत्री **स्व.जवाहरलाल नेहरू** ने एक बार घोषणा की थी कि मुनाफाखोरों को बिजली के खम्भों पर लटका दिया जायेगा।]*

एक दिन राजा ने खीझकर घोषणा कर दी कि मुनाफाखोरों को बिजली के खम्भे से लटका दिया जायेगा।

सुबह होते ही लोग बिजली के खम्भों के पास जमा हो गये। उन्होंने खम्भों की पूजा की,आरती उतारी और उन्हें तिलक किया।
शाम तक वे इंतजार करते रहे कि अब मुनाफाखोर टांगे जायेंगे- और अब। पर कोई नहीं टाँगा गया।

लोग जुलूस बनाकर राजा के पास गये और कहा,"महाराज,आपने तो कहा था कि मुनाफाखोर बिजली के खम्भे से लटकाये जायेंगे,पर खम्भे तो वैसे ही खड़े हैं और मुनाफाखोर स्वस्थ और सानन्द हैं।"

राजा ने कहा,"कहा है तो उन्हें खम्भों पर टाँगा ही जायेगा। थोड़ा समय लगेगा। टाँगने के लिये फन्दे चाहिये। मैंने फन्दे बनाने का आर्डर दे दिया है। उनके मिलते ही,सब मुनाफाखोरों को बिजली के खम्भों से टाँग दूँगा।

भीड़ में से एक आदमी बोल उठा,"पर फन्दे बनाने का ठेका भी तो एक मुनाफाखोर ने ही लिया है।"

राजा ने कहा,"तो क्या हुआ? उसे उसके ही फन्दे से टाँगा जायेगा।"

तभी दूसरा बोल उठा,"पर वह तो कह रहा था कि फाँसी पर लटकाने का ठेका भी मैं ही ले लूँगा।"

राजा ने जवाब दिया,"नहीं,ऐसा नहीं होगा। फाँसी देना निजी क्षेत्र का उद्योग अभी नहीं हुआ है।"

लोगों ने पूछा," तो कितने दिन बाद वे लटकाये जायेंगे।"

राजा ने कहा,"आज से ठीक सोलहवें दिन वे तुम्हें बिजली के खम्भों से लटके दीखेंगे।"

लोग दिन गिनने लगे।

सोलहवें दिन सुबह उठकर लोगों ने देखा कि बिजली के सारे खम्भे उखड़े पड़े हैं। वे हैरान हो गये कि रात न आँधी आयी न भूकम्प आया,फिर वे खम्भे कैसे उखड़ गये!

उन्हें खम्भे के पास एक मजदूर खड़ा मिला। उसने बतलाया कि मजदूरों से रात को ये खम्भे उखड़वाये गये हैं। लोग उसे पकड़कर राजा के पास ले गये।

उन्होंने शिकायत की ,"महाराज, आप मुनाफाखोरों को बिजली के खम्भों से लटकाने वाले थे ,पर रात में सब खम्भे उखाड़ दिये गये। हम इस मजदूर को पकड़ लाये हैं। यह कहता है कि रात को सब खम्भे उखड़वाये गये हैं।"

राजा ने मजदूर से पूछा,"क्यों रे,किसके हुक्म से तुम लोगोंने खम्भे उखाड़े?"

उसने कहा,"सरकार ,ओवरसियर साहब ने हुक्म दिया था।"

तब ओवरसियर बुलाया गया।

उससे राजा ने कहा," क्यों जी तुम्हें मालूम है ,मैंने आज मुनाफाखोरों को बिजली के खम्भे से लटकाने की घोषणा की थी?"

उसने कहा,"जी सरकार!"

"फिर तुमने रातों-रात खम्भे क्यों उखड़वा दिये?"

"सरकार,इंजीनियर साहब ने कल शाम हुक्म दिया था कि रात में सारे खम्भे उखाड़ दिये जायें।"

अब इंजीनियर बुलाया गया। उसने कहा उसे बिजली इंजीनियर ने आदेश दिया था कि रात में सारे खम्भे उखाड़ देना चाहिये।

बिजली इंजीनियर से कैफियत तलब की गयी,तो उसने हाथ जोड़कर कहा,"सेक्रेटरी साहब का हुक्म मिला था।"

विभागीय सेक्रेटरी से राजा ने पूछा,खम्भे उखाड़ने का हुक्म तुमने दिया था।"

सेक्रेटरी ने स्वीकार किया,"जी सरकार!"

राजा ने कहा," यह जानते हुये भी कि आज मैं इन खम्भों का उपयोग मुनाफाखोरों को लटकाने के लिये करने वाला हूँ,तुमने ऐसा दुस्साहस क्यों किया।"

सेक्रेटरी ने कहा,"साहब ,पूरे शहर की सुरक्षा का सवाल था। अगर रात को खम्भे न हटा लिये जाते, तो आज पूरा शहर नष्ट हो जाता!"

राजा ने पूछा,"यह तुमने कैसे जाना? किसने बताया तुम्हें?

सेक्रेटरी ने कहा,"मुझे विशेषज्ञ ने सलाह दी थी कि यदि शहर को बचाना चाहते हो तो सुबह होने से पहले खम्भों को उखड़वा दो।"

राजा ने पूछा,"कौन है यह विशेषज्ञ? भरोसे का आदमी है?"

सेक्रेटरी ने कहा,"बिल्कुल भरोसे का आदमी है सरकार।घर का आदमी है। मेरा साला होता है। मैं उसे हुजूर के सामने पेश करता हूँ।"

विशेषज्ञ ने निवेदन किया," सरकार ,मैं विशेषज्ञ हूँ और भूमि तथा वातावरण की हलचल का विशेष अध्ययन करता हूँ। मैंने परीक्षण के द्वारा पता लगाया है कि जमीन के नीचे एक भयंकर प्रवाह घूम रहा है। मुझे यह भी मालूम हुआ कि आज वह बिजली हमारे शहर के नीचे से निकलेगी। आपको मालूम नहीं हो रहा है ,पर मैं जानता हूँ कि इस वक्त हमारे नीचे भयंकर बिजली प्रवाहित हो रही है। यदि हमारे बिजली के खम्भे जमीन में गड़े रहते तो वह बिजली खम्भों के द्वारा ऊपर आती और उसकी टक्कर अपने पावरहाउस की बिजली से होती। तब भयंकर विस्फोट होता। शहर पर हजारों बिजलियाँ एक साथ गिरतीं। तब न एक प्राणी जीवित बचता ,न एक इमारत खड़ी रहती। मैंने तुरन्त सेक्रेटरी साहब को यह बात बतायी और उन्होंने ठीक समय पर उचित कदम उठाकर शहर को बचा लिया।

लोग बड़ी देर तक सकते में खड़े रहे। वे मुनाफाखोरों को बिल्कुल भूल गये। वे सब उस संकट से अविभूत थे ,जिसकी कल्पना उन्हें दी गयी थी। जान बच जाने की अनुभूति से दबे हुये थे। चुपचाप लौट गये।

उसी सप्ताह बैंक में इन नामों से ये रकमें जमा हुईं:-

सेक्रेटरी की पत्नी के नाम- २ लाख रुपये

श्रीमती बिजली इंजीनियर- १ लाख

श्रीमती इंजीनियर -१ लाख

श्रीमती विशेषज्ञ - २५ हजार

श्रीमती ओवरसियर-५ हजार

उसी सप्ताह '**मुनाफाखोर संघ**' के हिसाब में नीचे लिखी रकमें '**धर्मादा**' खाते में डाली गयीं-

कोढ़ियों की सहायता के लिये दान- २ लाख रुपये

विधवाश्रम को- १ लाख

क्षय रोग अस्पताल को- १ लाख

पागलखाने को-२५ हजार

अनाथालय को- ५ हजार

भोलाराम का जीव

ऐसा कभी नहीं हुआ था.

धर्मराज लाखों वर्षों से असंख्य आदमियों को कर्म और सिफ़ारिश के आधार पर स्वर्ग या नरक में निवास-स्थान 'अलॉट' करते आ रहे थे. पर ऐसा कभी नहीं हुआ था.

सामने बैठे चित्रगुप्त बार-बार चश्मा पोंछ, बार-बार थूक से पन्ने पलट, रजिस्टर पर रजिस्टर देख रहे थे. गलती पकड़ में ही नहीं आ रही थी. आखिर उन्होंने खीझ कर रजिस्टर इतने जोर से बन्द किया कि मक्खी चपेट में आ गई. उसे निकालते हुए वे बोले - "महाराज, रिकार्ड सब ठीक है. भोलाराम के जीव ने पाँच दिन पहले देह त्यागी और यमदूत के साथ इस लोक के लिए रवाना भी हुआ, पर यहाँ अभी तक नहीं पहुँचा."

धर्मराज ने पूछा - "और वह दूत कहाँ है?"

"महाराज, वह भी लापता है."

इसी समय द्वार खुले और एक यमदूत बदहवास वहाँ आया. उसका मौलिक कुरूप चेहरा परिश्रम, परेशानी और भय के कारण और भी विकृत हो गया था. उसे देखते ही चित्रगुप्त चिल्ला उठे - "अरे, तू कहाँ रहा इतने दिन? भोलाराम का जीव कहाँ है?"

यमदूत हाथ जोड़ कर बोला - "दयानिधान, मैं कैसे बतलाऊं कि क्या हो गया. आज तक मैंने धोखा नहीं खाया था, पर भोलाराम का जीव मुझे चकमा दे गया. पाँच दिन पहले

जब जीव ने भोलाराम का देह त्यागा, तब मैंने उसे पकड़ा और इस लोक की यात्रा आरम्भ की. नगर के बाहर ज्यों ही मैं उसे लेकर एक तीव्र वायु-तरंग पर सवार हुआ त्यों ही वह मेरी चंगुल से छूट कर न जाने कहाँ गायब हो गया. इन पाँच दिनों में मैंने सारा ब्रह्माण्ड छान डाला, पर उसका कहीं पता नहीं चला."

धर्मराज क्रोध से बोला - "मूर्ख ! जीवों को लाते-लाते बूढा हो गया फिर भी एक मामूली बूढे आदमी के जीव ने तुझे चकमा दे दिया."

दूत ने सिर झुका कर कहा - "महाराज, मेरी सावधानी में बिलकुल कसर नहीं थी. मेरे इन अभ्यस्त हाथों से अच्छे-अच्छे वकील भी नहीं छूट सके. पर इस बार तो कोई इन्द्रजाल ही हो गया."

चित्रगुप्त ने कहा- "महाराज, आजकल पृथ्वी पर इस प्रकार का व्यापार बहुत चला है. लोग दोस्तों को कुछ चीज़ भेजते हैं और उसे रास्ते में ही रेलवे वाले उड़ा लेते हैं. होजरी के पार्सलों के मोजे रेलवे अफसर पहनते हैं. मालगाड़ी के डब्बे के डब्बे रास्ते में कट जाते हैं. एक बात और हो रही है. राजनैतिक दलों के नेता विरोधी नेता को उड़ाकर बन्द कर देते हैं. कहीं भोलाराम के जीव को भी तो किसी विरोधी ने मरने के बाद खराबी करने के लिए तो नहीं उड़ा दिया?"

धर्मराज ने व्यंग्य से चित्रगुप्त की ओर देखते हुए कहा - "तुम्हारी भी रिटायर होने की उमर आ गई. भला भोलाराम जैसे नगण्य, दीन आदमी से किसी को क्या लेना-देना?"

इसी समय कहीं से घूमते-घामते नारद मुनि यहाँ आ गए. धर्मराज को गुमसुम बैठे देख बोले - "क्यों धर्मराज, कैसे चिन्तित बैठे हैं? क्या नरक में निवास-स्थान की समस्या अभी हल नहीं हुई?"

धर्मराज ने कहा - "वह समस्या तो कब की हल हो गई. नरक में पिछले सालों में बड़े गुणी कारीगर आ गए हैं. कई इमारतों के ठेकेदार हैं जिन्होंने पूरे पैसे लेकर रद्दी इमारतें बनाईं. बड़े बड़े इंजीनियर भी आ गए हैं जिन्होंने ठेकेदारों से मिलकर पंचवर्षीय योजनाओं का पैसा खाया. ओवरसीयर हैं, जिन्होंने उन मजदूरों की हाजिरी भर कर पैसा हड़पा जो कभी काम पर गए ही नहीं. इन्होंने बहुत जल्दी नरक में कई इमारतें तान दी हैं. वह समस्या तो हल हो गई, पर एक बड़ी विकट उलझन आ गई है. भोलाराम नाम के एक आदमी की पाँच दिन पहले मृत्यु हुई. उसके जीव को यह दूत यहाँ ला रहा था, कि जीव

इसे रास्ते में चकमा देकर भाग गया. इस ने सारा ब्रह्माण्ड छान डाला, पर वह कहीं नहीं मिला. अगर ऐसा होने लगा, तो पाप पुण्य का भेद ही मिट जाएगा."

नारद ने पूछा - "उस पर इनकमटैक्स तो बकाया नहीं था? हो सकता है, उन लोगों ने रोक लिया हो."

चित्रगुप्त ने कहा - "इनकम होती तो टैक्स होता. भुखमरा था."

नारद बोले - "मामला बड़ा दिलचस्प है. अच्छा मुझे उसका नाम पता तो बताओ. मैं पृथ्वी पर जाता हूँ."

चित्रगुप्त ने रजिस्टर देख कर बताया - "भोलाराम नाम था उसका. जबलपुर शहर में धमापुर मुहल्ले में नाले के किनारे एक डेढ़ कमरे टूटे-फूटे मकान में वह परिवार समेत रहता था. उसकी एक स्त्री थी, दो लड़के और एक लड़की. उम्र लगभग साठ साल. सरकारी नौकर था. पाँच साल पहले रिटायर हो गया था. मकान का किराया उसने एक साल से नहीं दिया, इस लिए मकान मालिक उसे निकालना चाहता था. इतने में भोलाराम ने संसार ही छोड़ दिया. आज पाँचवाँ दिन है. बहुत सम्भव है कि अगर मकान-मालिक वास्तविक मकान-मालिक है तो उसने भोलाराम के मरते ही उसके परिवार को निकाल दिया होगा. इस लिए आप को परिवार की तलाश में काफी घूमना पड़ेगा."

मां-बेटी के सम्मिलित क्रन्दन से ही नारद भोलाराम का मकान पहचान गए.

द्वार पर जाकर उन्होंने आवाज लगाई - "नारायण! नारायण!" लड़की ने देखकर कहा- "आगे जाओ महाराज."

नारद ने कहा - "मुझे भिक्षा नहीं चाहिए, मुझे भोलाराम के बारे में कुछ पूछ-ताछ करनी है. अपनी मां को जरा बाहर भेजो, बेटी!"

भोलाराम की पत्नी बाहर आई. नारद ने कहा - "माता, भोलाराम को क्या बीमारी थी?"

"क्या बताऊँ? गरीबी की बीमारी थी. पाँच साल हो गए, पेंशन पर बैठे. पर पेंशन अभी तक नहीं मिली. हर दस-पन्द्रह दिन में एक दरख्वास्त देते थे, पर वहाँ से या तो जवाब आता ही नहीं था और आता तो यही कि तुम्हारी पेंशन के मामले में विचार हो रहा है.

इन पाँच सालों में सब गहने बेच कर हम लोग खा गए. फिर बरतन बिके. अब कुछ नहीं बचा था. चिन्ता में घुलते-घुलते और भूखे मरते-मरते उन्होंने दम तोड़ दी."

नारद ने कहा - "क्या करोगी मां? उनकी इतनी ही उम्र थी."

"ऐसा तो मत कहो, महाराज ! उम्र तो बहुत थी. पचास साठ रुपया महीना पेंशन मिलती तो कुछ और काम कहीं कर के गुजारा हो जाता. पर क्या करें? पाँच साल नौकरी से बैठे हो गये और अभी तक एक कौड़ी नहीं मिली."

दुःख की कथा सुनने की फुरसत नारद को थी नहीं. वे अपने मुद्दे पर आए, "मां, यह तो बताओ कि यहाँ किसी से उन का विशेष प्रेम था, जिस में उन का जी लगा हो?"

पत्नी बोली - "लगाव तो महाराज, बाल बच्चों से ही होता है."

"नहीं, परिवार के बाहर भी हो सकता है. मेरा मतलब है, किसी स्त्री..."

स्त्री ने गुर्रा कर नारद की ओर देखा. बोली - "अब कुछ मत बको महाराज ! तुम साधु हो, उचक्के नहीं हो. जिंदगी भर उन्होंने किसी दूसरी स्त्री की ओर आँख उठाकर नहीं देखा."

नारद हँस कर बोले - "हाँ, तुम्हारा यह सोचना ठीक ही है. यही हर अच्छी गृहस्थी का आधार है. अच्छा, माता मैं चला."

स्त्री ने कहा - "महाराज, आप तो साधु हैं, सिद्ध पुरूष हैं. कुछ ऐसा नहीं कर सकते कि उन की रुकी हुई पेंशन मिल जाए. इन बच्चों का पेट कुछ दिन भर जाए."

नारद को दया आ गई थी. वे कहने लगे - "साधुओं की बात कौन मानता है? मेरा यहाँ कोई मठ तो है नहीं. फिर भी मैं सरकारी दफ्तर जाऊँगा और कोशिश करूंगा."

वहाँ से चल कर नारद सरकारी दफ़्तर पहुँचे. वहाँ पहले ही से कमरे में बैठे बाबू से उन्होंने भोलाराम के केस के बारे में बातें कीं. उस बाबू ने उन्हें ध्यानपूर्वक देखा और बोला - "भोलाराम ने दरख्वास्तें तो भेजी थीं, पर उन पर वज़न नहीं रखा था, इसलिए कहीं उड़ गई होंगी."

नारद ने कहा - "भई, ये बहुत से 'पेपर-वेट' तो रखे हैं. इन्हें क्यों नहीं रख दिया?"

बाबू हँसा - "आप साधु हैं, आपको दुनियादारी समझ में नहीं आती. दरख्वास्तें 'पेपरवेट' से नहीं दबतीं. खैर, आप उस कमरे में बैठे बाबू से मिलिए."

नारद उस बाबू के पास गए. उस ने तीसरे के पास भेजा, तीसरे ने चौथे के पास चौथे ने पांचवे के पास. जब नारद पच्चीस-तीस बाबुओं और अफ़सरों के पास घूम आए तब एक चपरासी ने कहा - "महाराज, आप क्यों इस झंझट में पड़ गए. अगर आप साल भर भी यहाँ चक्कर लगाते रहे, तो भी काम नहीं होगा. आप तो सीधे बड़े साहब से मिलिए. उन्हें खुश कर दिया तो अभी काम हो जाएगा."

नारद बड़े साहब के कमरे में पहुँचे. बाहर चपरासी ऊँघ रहा था. इसलिए उन्हें किसी ने छेड़ा नहीं. बिना 'विजिटिंग कार्ड' के आया देख साहब बड़े नाराज हुए. बोले - "इसे कोई मन्दिर वन्दिर समझ लिया है क्या? धड़धड़ाते चले आए! चिट क्यों नहीं भेजी?"

नारद ने कहा - "कैसे भेजता? चपरासी सो रहा है."

"क्या काम है?" साहब ने रौब से पूछा.

नारद ने भोलाराम का पेंशन केस बतलाया.

साहब बोले- "आप हैं बैरागी. दफ़्तरों के रीति-रिवाज नहीं जानते. असल में भोलाराम ने गलती की. भई, यह भी एक मन्दिर है. यहाँ भी दान पुण्य करना पड़ता है. आप भोलाराम के आत्मीय मालूम होते हैं. भोलाराम की दरख्वास्तें उड़ रही हैं. उन पर वज़न रखिए."

नारद ने सोचा कि फिर यहाँ वज़न की समस्या खड़ी हो गई. साहब बोले - "भई, सरकारी पैसे का मामला है. पेंशन का केस बीसों दफ्तरों में जाता है. देर लग ही जाती है. बीसों बार एक ही बात को बीस जगह लिखना पड़ता है, तब पक्की होती है. जितनी पेंशन मिलती है उतने की स्टेशनरी लग जाती है. हाँ, जल्दी भी हो सकती है मगर..." साहब रुके.

नारद ने कहा - "मगर क्या?"

साहब ने कुटिल मुसकान के साथ कहा, "मगर वज़न चाहिए. आप समझे नहीं. जैसे आपकी यह सुन्दर वीणा है, इसका भी वज़न भोलाराम की दरख्वास्त पर रखा जा सकता

है. मेरी लड़की गाना बजाना सीखती है. यह मैं उसे दे दूंगा. साधु-सन्तों की वीणा से तो और अच्छे स्वर निकलते हैं."

नारद अपनी वीणा छिनते देख जरा घबराए. पर फिर संभल कर उन्होंने वीणा टेबिल पर रख कर कहा - "यह लीजिए. अब जरा जल्दी उसकी पेंशन ऑर्डर निकाल दीजिए."

साहब ने प्रसन्न्ता से उन्हें कुर्सी दी, वीणा को एक कोने में रखा और घण्टी बजाई. चपरासी हाजिर हुआ.

साहब ने हुक्म दिया - बड़े बाबू से भोलाराम के केस की फ़ाइल लाओ.

थोड़ी देर बाद चपरासी भोलाराम की सौ-डेढ़-सौ दरख्वास्तों से भरी फ़ाइल ले कर आया. उसमें पेंशन के कागजात भी थे. साहब ने फ़ाइल पर नाम देखा और निश्चित करने के लिए पूछा - "क्या नाम बताया साधु जी आपने?"

नारद समझे कि साहब कुछ ऊँचा सुनता है. इसलिए जोर से बोले - "भोलाराम!"

सहसा फ़ाइल में से आवाज आई - "कौन पुकार रहा है मुझे. पोस्टमैन है? क्या पेंशन का ऑर्डर आ गया?"

नारद चौंके. पर दूसरे ही क्षण बात समझ गए. बोले - "भोलाराम ! तुम क्या भोलाराम के जीव हो?"

"हाँ ! आवाज आई."

नारद ने कहा - "मैं नारद हूँ. तुम्हें लेने आया हूँ. चलो स्वर्ग में तुम्हारा इंतजार हो रहा है."

आवाज आई - "मुझे नहीं जाना. मैं तो पेंशन की दरख्वास्तों पर अटका हूँ. यहीं मेरा मन लगा है. मैं अपनी दरख्वास्तें छोड़कर नहीं जा सकता."

शर्म की बात पर ताली पीटना

मैं आजकल बड़ी मुसीबत में हूं।

मुझे भाषण के लिए अक्सर बुलाया जाता है। विषय यही होते हैं- देश का भविष्य, छात्र समस्या, युवा-असंतोष, भारतीय संस्कृति भी(हालांकि निमंत्रण की चिट्ठी में 'संस्कृति' अक्सर गलत लिखा होता है), पर मैं जानता हूं जिस देश में हिंदी-हिंसा आंदोलन भी जोरदार होता है, वहां मैं 'संस्कृति' की सही शब्द रचना अगर देखूं तो बेवकूफ के साथ ही 'राष्ट्र-द्रोही' भी कहलाऊंगा। इसलिए जहां तक बनता है, मैं भाषण ही दे आता हूं।

मजे की बात यह है कि मुझे धार्मिक समारोहों में भी बुला लिया जाता है। सनातनी, वेदान्ती, बौद्ध, जैन सभी बुला लेते हैं; क्योंकि इन्हें न धर्म से मतलब है, न संत से, न उसके उपदेश से। ये धर्मोपदेश को भी समझना नहीं चाहते। पर ये साल में एक-दो बार सफल समारोह करना चाहते हैं। और जानते हैं कि मुझे बुलाकर भाषण करा देने से समारोह सफल होगा, जनता खुश होगी और उनका जलसा कामयाब हो जाएगा।

मैं उनसे कह देता हूं- जितना लाइट और लाउडस्पीकरवालों को दोगे, कम से कम उतना मुझ गरीब शास्ता को दे देना- तो वे दे भी देते हैं। मुझे अगर लगे कि इनका इरादा कुछ गड़बड़ है तो मैं शास्ता विक्रयकर अधिकारी या थानेदार की भी सहायता ले लेता हूं। ये लोग पता नहीं क्यूं मेरे प्रति आत्मीयता का अनुभव करते हैं। इनके कारण सारा काम 'धार्मिक' और 'पवित्र' वातावरण में हो जाता है।

पर मेरी एक नयी मुसीबत पैदा हो गयी है। जब मैं ऐसी बात करता हूं जिस पर शर्म आनी चाहिए, तब उस पर लोग हंसकर ताली पीटने लगते हैं।

मैं एक संत की जयंती के समारोह में अध्यक्ष था। मैं जानता था कि बुलाने वाले लोग मुझसे भीतर से बहुत नाराज रहते हैं। यह भी जानता हूं कि ये मुझे गंदी-गंदी गालियां देते हैं, क्योंकि राजनीति और समाज के मामले में मैं मुंहफट हो जाता हूं। तब सुनने वालों का दीन क्रोध बड़ा मजा देता है। पर उस शाम मेरे गले में वही लोग मालाएं डाल रहे थे- यह अच्छी और उदात्त बात भी हो सकती है। पर मैं जानता था कि ये मेरे व्यंग्य, हास्य और कटु उक्तियों का उपयोग करके उन तीन-चार हजार श्रोताओं को प्रसन्न करना चाहते हैं- याने आयोजन सफल करना चाहते हैं- याने बेवकूफ बनाना चाहते हैं।

जयन्ती एक क्रांतिकारी संत की थी। ऐसे संत की जिसने कहा- खुद सोचो। सत्य के अनेक कोंण होते हैं। हर बात में ‘शायद’ का ध्यान जरूर रखना चाहिए। महावीर और बुद्ध ऐसे संत हुए, जिन्होने कहा- सोचो। शंका करो। प्रश्न करो। तब सत्य को पहचानो। जरूरी नहीं कि वही शाश्वत सत्य है, जो कभी किसी ने लिख दिया था।

ये संत वैज्ञानिक दृष्टि संपन्न थे। और जब तक इन संतों के विचारों का प्रभाव रहा तब तक विज्ञान की उन्नति भारत में हुई। भौतिक और रासायनिक विज्ञान की शोध हुई। चिकित्सा विज्ञान की शोध हुई। नागार्जुन हुए, बाणभट्ट हुए। इसके बाद लगभग डेढ़ शताब्दी में भारत के बड़े से बड़े दिमाग ने यही काम किया कि सोचते रहे- ईश्वर एक हैं या दो हैं, या अनेक हैं। हैं तो सूक्ष्म हैं या स्थूल। आत्मा क्या है, परमात्मा क्या है। इसके साथ ही केवल काव्य रचना।

विज्ञान नदारद। गल्ला कम तौलेंगे, मगर द्वैतवाद, अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, मुक्ति और पुनर्जन्म के बारे में बड़े परेशान रहेंगे। कपड़ा कम नापेंगे, दाम ज्यादा लेंगे, पर पंच आभूषण के बारे में बड़े जाग्रत रहेंगे।

झूठे आध्यात्म ने इस देश को दुनिया में तारीफ दिलवायी, पर मनुष्य को मारा और हर डाला, उस धार्मिक संत-समारोह में मैं अध्यक्ष के आसन पर था। बायें तरफ दो दिगंबर मुनि बैठे थे। दाहिने तरफ दो श्वेतांबर। चार मुनियों से घिरा यह दीन लेखक बैठा था। पर सही बात यह है कि ‘होल टाइम’ मुनि या तपस्वी बड़ा दयनीय प्रणी होता है। वह सार्थकता का अनुभव नहीं करता, कर्म नहीं खोज पाता। श्रद्धा जरूर लेता है- मगर ज्यादा कर्महीन श्रद्धा ज्ञानी को बहुत ‘बोर’ करती है।

दिगंबर मुनि और श्वेतांबर मुनि आपस में कैसे देख रहे थे, यह मैं जांच रहा था। लेखक की दो नहीं सौ आंखें होती हैं। दिगंबर अपने को सर्वहारा का मुनि मानता है और श्वेतांबर मुनि को संपन्न समाज का। यह मैं समझ गया- उनके तेवर से।

मैंने आरंभ में कहा भी- “सभ्यता के विकास का क्रम होता है। जब हेण्डलूम, पावरलूम, कपड़ा मिल नहीं थी तब विश्व के हर समाज का ऋषि और शास्ता कम से कम कपड़े पहनता था; क्योंकि जो भी अच्छे कपड़े बन पाते थे, उन्हें सामंत वर्ग पहनता था। तब लंगोटी लगाना या नंगा रहना दुनिया भर में संत का आचार होता था।”

“पर अब हम फाइन से फाइन कपड़ा बनाते और बेचते हैं, पर अपने मुनियों को नंगा रखते हैं। यह भी क्या पाप नहीं है?”

मुनि मेरी बात सुनकर गंभीर हो गए और सोचने लगे, पर समारोह वाले हंसने और ताली पीटने लगे। और मैंने देखा एक मुनि उनके इस ओछे व्यवहार से खिन्न हैं। मैंने सोचा कि मुनि से कहूं कि हम दोनों मिलकर सिर पीट लें। शर्म की बात पर जिस समाज के लोगों को हंसी आये- इस बात पर मुनि और 'साधु' दोनों रो लें।

पर इसके बाद जब मुनि बोले तो उन्होंने घोर हिंसा की शैली में अहिंसा समझायी। कुछ शब्द मुझे अभी भी याद हैं, "पाखण्डियों, क्या संत को सर्टिफिकेट देने का समारोह करते हो? तुम्हारे सर्टिफिकेट से संत को कोई परमिट या नौकरी मिल जाएगी? पाप की कमाई खाते हो। झूठ बोलते हो। सत्य की बात करते हो। बेईमानी से परिग्रह करते हो। बताओ ये चार-पांच मंजिलों की इमारतें क्या सत्य, अहिंसा और अपरिग्रह से बनी हैं?"

मैं दंग रह गया। मुनि का चेहरा लाल था क्रोध से। वे किसी सच्चे क्रांतिकारी की तरह बोल रहे थे; क्योंकि उन्होंने शरीर ढांकने को कपड़ा लेने का किसी से अहसान नहीं लेना था।

सभा में सन्नाटा।

लगातार सन्नाटा।

और मुनि पूसे क्रोध के साथ सारी बनावट और फरेब को नंगा कर रहे थे।

अंत में मुझे अध्यक्षीय भषण देना लाजिमी था। मैं देख रहा था कि तीस-चालीस साल के गुट में युवक लोग पांच-छः ठिकानों पर बैठे इंतजार कर रहे थे कि मैं क्या कहता हूं।

मैंने बहुत छोटा धन्यवाद जैसा भाषण दिया। मुनियों और विद्वानों का आभार माना और अंत में कहा- "एक बात मैं आपके सामने स्वीकार करना चाहता हूं। मैंने और आपने तीन घंटे ऊंचे आदर्शों की, सदाचरण की, प्रेम की, दया की बातें सुनीं। पर मैं आपके सामने साफ कहता हूं कि तीन घंटे पहले जितना कमीना और बेईमान मैं था, उतना ही अब भी हूं। मेरी मैंने कह दी। आप लोगों की आप लोग जानें।"

इस पर भी क्या हुआ- हंसी खूब हुई और तालियां पिटीं।

उन्हें मजा आ गया।

एक और बड़े लोगों के क्लब में मैं भाषण दे रहा था। मैं देश की गिरती हालत, महंगाई, गरीबी, बेकारी, भ्रष्टाचार पर बोल रहा था और खूब बोल रहा था।

मैं पूरी पीड़ा से, गहरे आक्रोश से बोल रहा था। पर जब मैं ज्यादा मार्मिक हो जाता, वे लोग तालियां पीटते थे। मैंने कहा- हम लोग बहुत पतित हैं। तो वे ताली पीटने लगे।

उन्हे मजा आ रहा था और शाम एक अच्छे भाषण से सफल हो रही थी।

और मैं इन समारोहों के बाद रात को घर लौटता हूं, तो सोचता रहता हूं कि जिस समाज के लोग शर्म की बात पर हंसें और ताली पीटें, उसमें क्या कभी कोई क्रांतिकारी हो सकता है?

होगा शायद। पर तभी होगा, जब शर्म की बात पर ताली पीटने वाले हाथ कटेंगे और हंसने वाले जबड़े टूटेंगे।

पिटने-पिटने में फर्क

(यह आत्म प्रचार नहीं है। प्रचार का भार मेरे विरोधियों ने ले लिया है। मैं बरी हो गया। यह ललित निबंध है।)

बहुत लोग कहते हैं- तुम पिटे। शुभ ही हुआ। पर तुम्हारे सिर्फ दो अखबारी वक्तव्य छपे। तुम लेखक हो। एकाध कहानी लिखो। रिपोर्ताज लिखो। नहीं तो कोई ललित निबंध लिख डालो। पिट भी जाओ और साहित्य-रचना भी न हो। यह साहित्य के प्रति बड़ा अन्याय है। लोगों को मिरगी आती है और वे मिरगी पर उपन्यास लिख डालते हैं। टी-हाउस में दो लेखकों में सिर्फ मां-बहन की गाली-गलौज हो गयी। दोनों ने दो कहानियां लिख डालीं। दोनों बढ़िया। एक ने लिखा कि पहला नीच है। दूसरे ने लिखा- मैं नहीं, वह नीच है। पढ़ने वालों ने निष्कर्ष निकाला कि दोनों ही नीच हैं। देखो, साहित्य का कितना लाभ हुआ कि यह सिद्ध हो गया कि दोनों लेखक नीच हैं। फिर लोगों ने देखा कि दोनों गले मिल रहे हैं। साथ चाय पी रहे हैं। दोनों ने मां-बहन की गाली अपने मन के कलुष से नहीं दी थी, साहित्य-साधना के लिए दी थी। ऐसे लेखक मुझे पसंद हैं।

पिटाई की सहानुभूति के सिलसिले में जो लोग आये, उनकी संख्या काफी होती थी। मैं उन्हें पान खिलाता था। जब पान का खर्च बहुत बढ़ गया, तो मैंने सोचा पीटने वालों के पास जाऊं और कहूं, "जब तुमने मेरे लिए इतना किया है, मेरा यश फैलाया है, तो कम से कम पान का खर्च दे दो। चाहे तो एक बेंत और मार लो। लोग तो खरोंच लग जाय तो भी पान का खर्च ले लेते हैं।"

मेरे पास कई तरह के दिलचस्प आदमी आते हैं।

आमतौर पर लोग आकर यही कहते हैं, "सुनकर बड़ा दुख हुआ, बड़ा बुरा हुआ।"

मैं इस 'बुरे लगने' और 'दुख' से बहुत बोर हो गया। पर बेचारे लोग और कहें भी क्या?

मगर एक दिलचस्प आदमी आये। बोले, "इतने सालों से लिख रहे हो। क्या मिला? कुछ लोगों की तारीफ, बस! लिखने से ज्यादा शोहरत पिटने से मिली। इसलिए हर लेखक को साल में कम से कम एक बार पिटना चाहिए। तुम छः महीने में एक बार पिटो। फिर देखो कि बिना एक शब्द लिखे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के होते हो या नहीं। तुम चाहो तो तुम्हारा यह काम मैं ही कर सकता हूं।"

मैंने कहा, "बात सही है। जब जरूरत होगी, आपको तकलीफ दूंगा। पर यार ज्यादा मत मारना।"

पिटा पहले भी हूं।

मैंट्रिक में था तो एक सहपाठी रामेश्वर से मेरा झगड़ा था। एक दिन उसे मैं ढकेलते-ढकेलते कक्षा की दीवार तक ले गया। वह फंस गया था। मैंने उसे पीटा। फिर दोनों में अच्छे संबंध हो गये। स्कूली लड़ाई स्थाई नहीं होती। पर वह गांठ बांधे था। हमारे घर से स्कूल डेढ़ मील दूर था। एक दिन हम दोनों गपशप करते शाम के झुटपुटे में आ रहे थे कि वह एकाएक बोला, "अरे, यह रामदास कहां से आ रहा है? वह देखो।" मैं उस तरफ देखने लगा। उसने बिजली की तेजी से मेरी टांगों में हाथ डाला और वह पटखनी दी कि मैं नाले के पुल से नीचे गिर पड़ा। उठा। शरीर से ताकत से मैं डेवढ़ा पड़ता था। सोचा, इसे दमचूं। पर उसने बड़े मजे की बात कही। कहने लगा, "देखो, अदा-बदा हो गये। अपन अब पक्के दोस्त। मैंने तुम्हें कैसी बढ़िया तरकीब सिखायी है।" मैंने भी कहा, "हां यार, तरकीब बढ़िया है। मैं काफी दुश्मनों को ठीक करूंगा।" फिर मैंने चार विरोधियों को वहीं आम के झुरमुट में पछाड़ा। तरकीब वही- साथ जा रहे हैं। एकाएक कहता- अरे, वह उधर

से श्याम सुंदर आ रहा है। वह उधर देखने लगता और मैं उसकी टांगों में हाथ डालकर सड़क के नीचे गढ़े में फेंक देता।

यह तो स्कूल की पिटाई हुई।

लिखने लगा, तो फिर एक बार पिटाई हुई। आज से पंद्रह-बीस साल पहले। मैं कहानियां लिखता और उसमें 'कमला' नाम की पात्री आ जाती। कुछ नाम कमला, विमला, आशा, सरस्वती ऐसे हैं कि कलम पर यों ही आ जाते हैं।

मुझे दो चिट्ठियां मिलीं- 'खबरदार, कभी कमला कहानी में आयी तो ठीक कर दिये जाओगे। वह मेरी प्रेमिका है और तुम उससे कहानी में हर कुछ करवाते हो। वह ऐसी नहीं है।'

मैं बात टाल गया।

एक दिन संकरी गली से घर आ रहा था। आगे गली का मोड़ था। वहीं मकान के पीछे की दीवार थी। एक आदमी चुपचाप पीछे से आया और ऐसे जोर से धक्का दिया कि मैं दीवार तक पहुंच गया। हाथ आगे बढ़ाकर मैंने दीवार पर रख दिये और सिर बचा लिया, वरना सिर फूट जाता। बाद में मालूम हुआ कि वह शहर का नंबर एक का पहलवान है। मैंने कमला को विमला कर दिया। लेखक को नाम से क्या फर्क पड़ता है।

पर यह जून वाली ताजा पिटाई बड़ी मजेदार रही। मारने वाले आये। पांच-छः बेंत मारे। मैंने हथेलियों से आंखें बचा लीं। पांच-सात सेकंड में काम खत्म। वे दो वाक्य राजनीति के बोलकर हवा में विलीन हो गये।

मैंने डिटाल लगाया और एक-डेढ़ घंटे सोया। ताजा हो गया।

तीन दिन बाद अखबारों में खबर छपी तो मजे की बातें मेरे कानों में शहर और बाहर से आने लगीं। स्नेह, दुख की आती ही थीं। पर-

- अच्छा पिटा।
- पिटने लायक ही था।
- घोर अहंकारी आदमी।
- ऐसा लिखेगा तो पिटेगा ही।

- जो लिखता है, वह साहित्य है क्या? अरे, प्रेम कहानी लिख। उसमें कोई नहीं पिटता।

कुछ लेखकों की प्रसन्नता मेरे पास तक आयी। उनका कहना था- अब यह क्या लिखेगा? सब खत्म। हो गया इसका काम-तमाम। बहुत आंग मूतता था। पर मैंने ठीक वैसा ही लिखना जारी रखा और इस बीच पांच कहानियां तथा चार निबंध लिख डाले और एक डायरी उपन्यास तिहाई लिख लिया है।

सहानुभूति वाले बड़े दिलचस्प होते हैं। तरह-तरह की बातें करते हैं। बुजुर्ग-बीमार-वरिष्ठ साहित्यकार बाबू रामानुजलाल श्रीवास्तव ने अपनी मोटी छड़ी भेजी और लिखा- "अब यह मेरे काम की नहीं रही। मेरी दुनियां अब बिस्तर हो गयी है। इस छड़ी को साथ रखो।"

लाठी में गुन बहुत हैं, सदा राखिए संग.......

एक अपरिचित आये और एक छड़ी दे गये। वह गुप्ती थी, पर भीतर फलक नहीं था। मूठ पर पैने लोहे का ढक्कन लगा था, जिसके कनपटी पर एक वार से आदमी पछाड़ खा जाए।

मेरे चाचा नम्बर एक के लठैत थे। वे लट्ठ को तेल पिलाते थे और उसे दुखभंजन कहते थे। मुहल्ले के रंगदार को, जो सबको तंगा करता था, उन्होंने पकड़ा। सामने एक पतले झाड़ से बांधा और वह पिटाई की कि वह हमेशा के लिए ठीक हो गया। मैंने ही कहा, "दादा इसे अब छोड़ दो।" उन्होंने छोड़ दिया, मगर कहा, "देख मैंने दुखभंजन से काम नहीं लिया। गड़बड़ की तो दुखभंजन अपना काम करेगा।"

वह दुखभंजन पता नहीं कहां चला गया। उनकी मृत्यु हो गयी। पर वे शीशम की अपनी छड़ी छोड़ गये हैं।

एक साहब एक दिन आये। एक-दो बार दुआ-सलाम हुई होगी। पर उन्होंने प्रेमी मित्रों से ज्यादा दुख जताया। मुझे आशंका हुई कि कहीं वे रो न पड़ें।

वे मुझे उस जगह ले गये, जहां मैं पिटा था। जगह का मुलाहजा किया।

- कहां खड़े थे?
- किस तरफ देख रहे थे?

- क्या वे पीछे से चुपचाप आये?
- तुम सावधान नहीं थे?
- कुल पांच-सात सेकंड में हो गया?
- बिना चुनौती दिये हमला करना कायरता है। सतयुग से चुनौती देकर हमला किया जाता रहा है, पर यह कलियुग है।

मैं परेशान। जिस बात को ढाई महीने हो गये, जिसे मैं भूल जाना चाहता हूं, उसी की पूरी तफशीश कर रहा है। कहीं यह खुफिया विभाग का आदमी तो नहीं है? पर जिसका सब खुला है, उसे खुफिया से क्या डर।

वे आकर बैठ गये।

कहने लगे, "नाम बहुत फैल गया है। मन्त्रियों ने दिलचस्पी ली होगी?"

मैंने कहा, "हां, ली।"

वे बोले, "मुख्यमंत्री ने भी ली होगी। मुख्यमंत्री से आपके संबंध बहुत अच्छे होंगे?"

मैंने कहा, "अच्छे संबंध हैं।"

वे बोले, "मुख्यमंत्री आपकी बात मानते हैं?"

मैंने कहा, "हां, मान भी लेते हैं।"

मैं परेशान कि आखिर ये बातें क्यों करते हैं। क्या मकसद है?

आखिर वे खुले।

कहने लगे, "मुख्यमंत्री आपकी बात मानते हैं। लड़के का तबादला अभी कांकरे हो गया है। जरा मुख्यमंत्री से कहकर उसका तबादला यहीं करवा दीजिए।"

पिटे तो तबादला करवाने, नियुक्ति कराने की ताकत आ गयी- ऐसा लोग मानने लगे हैं। मानें। मानने से कौन किसे रोक सकता है। यह क्या कम साहित्य की उपलब्धि है कि पिटकर लेखक तबादला कराने लायक हो जाये। सन् 1973 की यह सबसे बड़ी साहित्यिक उपलब्धि है। पर अकादमी माने तो।

यस सर

एक काफी अच्छे लेखक थे। वे राजधानी गए। एक समारोह में उनकी मुख्यमंत्री से भेंट हो गयी। मुख्यमंत्री से उनका परिचय पहले से था। मुख्यमंत्री ने उनसे कहा- आप मजे में तो हैं। कोई कष्ट तो नहीं है? लेखक ने कह दिया- कष्ट बहुत मामूली है। मकान का कष्ट। अच्छा सा मकान मिल जाए, तो कुछ ढंग से लिखना-पढ़ना हो। मुख्यमंत्री ने कहा- मैं चीफ सेक्रेटरी से कह देता हूं। मकान आपका 'एलाट' हो जाएगा।

मुख्यमंत्री ने चीफ सेक्रेटरी से कह दिया कि अमुक लेखक को मकान 'एलाट' करा दो।

चीफ सेक्रेटरी ने कहा- यस सर।

चीफ सेक्रेटरी ने कमिश्नर से कह दिया। कमिश्नर ने कहा- यस सर।

कमिश्नर ने कलेक्टर से कहा- अमुक लेखक को मकान 'एलाट' कर दो। कलेक्टर ने कहा- यस सर।

कलेक्टर ने रेंट कंट्रोलर से कह दिया। उसने कहा- यस सर।

रेंट कंट्रोलर ने रेंट इंस्पेक्टर से कह दिया। उसने भी कहा- यस सर।

सब बाजाब्ता हुआ। पूरा प्रशासन मकान देने के काम में लग गया। साल डेढ़ साल बाद फिर मुख्यमंत्री से लेखक की भेंट हो गई। मुख्यमंत्री को याद आया कि इनका कोई काम होना था। मकान 'एलाट' होना था।

उन्होंने पूछा- कहिए, अब तो अच्छा मकान मिल गया होगा?

लेखक ने कहा- नहीं मिला।

मुख्यमंत्री ने कहा- अरे, मैंने तो दूसरे ही दिन कह दिया था।

लेखक ने कहा- जी हां, ऊपर से नीचे तक 'यस सर' हो गया।

बदचलन

एक बाड़ा था। बाड़े में तेरह किराएदार रहते थे। मकान मालिक चौधरी साहब पास ही एक बंगले में रहते थे।

एक नए किराएदार आए। वे डिप्टी कलेक्टर थे। उनके आते ही उनका इतिहास भी मुहल्ले में आ गया था। वे इसके पहले ग्वालियर में थे। वहां दफ्तर की लेडी टाइपिस्ट को लेकर कुछ मामला हुआ था। वे साल भर सस्पैंड रहे थे। यह मामला अखबार में भी छपा था। मामला रफा-दफा हो गया और उनका तबादला इस शहर में हो गया।

डिप्टी साहब के इस मकान में आने के पहले ही उनके विभाग का एक आदमी मुहल्ले में आकर कह गया था कि यह बहुत बदचलन, चरित्रहीन आदमी है। जहां रहा, वहीं इसने बदमाशी की। यह बात सारे तेरह किराएदारों में फैल गई।

किरदार आपस में कहते- यह शरीफ आदमियों का मोहल्ला है। यहां ऐसा आदमी रहने आ रहा है। चौधरी साहब ने इस आदमी को मकान देकर अच्छा नहीं किया।

कोई कहते- बहू-बेटियां सबके घर में हैं। यहां ऐसा दुराचारी आदमी रहने आ रहा है। भला शरीफ आदमी यहां कैसे रहेंगे।

डिप्टी साहब को मालूम था कि मेरे बारे में खबर इधर पहुंच चुकी है। वे यह भी जानते थे कि यहां सब लोग मुझसे नफरत करते हैं। मुझे बदमाश मानते हैं। वे इस माहौल में अड़चन महसूस करते थे। वे हीनता की भावना से ग्रस्त थे। नीचा सिर किए आते-जाते थे। किसी से उनकी दुआ-सलाम नहीं होती थी।

इधर मुहल्ले के लोग आपस में कहते थे- शरीफों के मुहल्ले में यह बदचलन आ बसा है।

डिप्टी साहब का सिर्फ मुझसे बोलचाल का संबंध स्थापित हो गया था। मेरा परिवार नहीं था। मैं अकेला रहता था। डिप्टी साहब कभी-कभी मेरे पास आकर बैठ जाते। वे अकेले रहते थे। परिवार नहीं लाए थे।

एक दिन उन्होंने मुझसे कहा- ये जो मिस्टर दास हैं, ये रेलवे के दूसरे पुल के पास एक औरत के पास जाते हैं। बहुत बदचलन औरत है।

दूसरे दिन मैंने देखा, उनकी गर्दन थोड़ी सी उठी है।

मुहल्ले के लोग आपस में कहते थे- शरीफों के मुहल्ले में यह बदचलन आ गया।

दो-तीन दिन बाद डिप्टी साहब ने मुझसे कहा- ये जो मिसेज चोपड़ा हैं, इनका इतिहास आपको मालूम है? जानते हैं इनकी शादी कैसे हुई? तीन आदमी इनसे फंसे थे। इनका पेट फूल गया। बाकी दो शादीशुदा थे। चोपड़ा को इनसे शादी करनी पड़ी।

दूसरे दिन डिप्टी साहब का सिर थोड़ा और ऊंचा हो गया।

मुहल्ले वाले अभी भी कह रहे थे- शरीफों के मुहल्ले में कैसा बदचलन आदमी आ बसा।

तीन-चार दिन बाद फिर डिप्टी साहब ने कहा- श्रीवास्तव साहब की लड़की बहुत बिगड़ गई है। ग्रीन होटल में पकड़ी गई थी एक आदमी के साथ।

डिप्टी साहब का सिर और ऊंचा हुआ।

मुहल्ले वाले अभी भी कह रहे थे- शरीफों के मुहल्ले में यह कहां का बदचलन आ गया।

तीन-चार दिन बाद डिप्टी साहब ने कहा- ये जो पांडे साहब हैं, अपने बड़े भाई की बीवी से फंसे हैं। सिविल लाइंस में रहता है इनका बड़ा भाई।

डिप्टी साहब का सिर और ऊंचा हो गया था।

मुहल्ले के लोग अभी भी कहते थे- शरीफों के मुहल्ले में यह बदचलन कहां से आ गया।

डिप्टी साहब ने मुहल्ले में लगभग हर एक के बारे में कुछ पता लगा लिया था। मैं नहीं कह सकता कि यह सब सच था या उनका गढ़ा हुआ। आदमी वे उस्ताद थे। ऊंचे कलाकार। हर बार जब वे किसी की बदचलनी की खबर देते, उनका सिर और ऊंचा हो जाता।

अब डिप्टी साहब का सिर पूरा तन गया था। चाल में अकड़ आ गई थी। लोगों से दुआ सलाम होने लगी थी। कुछ बात भी कर लेते थे।

एक दिन मैंने कहा- बीवी-बच्चों को ले आइए न। अकेले तो तकलीफ होती होगी।

डिप्टी साहब ने कहा- अरे साहब, शरीफों के मुहल्ले में मकान मिले तभी तो लाऊंगा बीवी-बच्चों को।

एक अशुद्ध बेवकूफ

बिना जाने बेवकूफ बनाना एक अलग और आसान चीज है। कोई भी इसे निभा देता है।

मगर यह जानते हुए कि मैं बेवकूफ बनाया जा रहा हूं और जो मुझे कहा जा रहा है, वह सब झूठ है- बेवकूफ बनते जाने का एक अपना मजा है। यह तपस्या है। मैं इस तपस्या का मजा लेने का आदी हो गया हूं। पर यह महंगा मजा है- मानसिक रूप से भी और इस तरह से भी। इसलिए जिनकी हैसियत नहीं है उन्हें यह मजा नहीं लेना चाहिए। इसमें मजा ही मजा नहीं है- करुणा है, मनुष्य की मजबूरियों पर सहानुभूति है, आदमी की पीड़ा की दारुण व्यथा है। यह सस्ता मजा नहीं है। जो हैसियत नहीं रखते उनके लिए दो रास्ते हैं- चिढ़ जायें या शुद्ध बेवकूफ बन जायें। शुद्ध बेवकूफ एक दैवी वरदान है, मनुष्य जाति को। दुनिया का आधा सुख खत्म हो जाए, अगर शुद्ध बेवकूफ न हों। मैं शुद्ध नहीं, 'अशुद्ध' बेवकूफ हूं। और शुद्ध बेवकूफ बनने को हमेशा उत्सुक रहता हूं।

अभी जो साहब आये थे, निहायत अच्छे आदमी हैं। अच्छी सरकारी नौकरी में हैं। साहित्यिक भी हैं। कविता भी लिखते हैं। वे एक परिचित के साथ मेरे पास कवि के रूप में आये। बातें काव्य की ही घंटा भर होती रहीं- तुलसीदास, सूरदास, गालिब, अनीस वगैरह। पर मैं 'अशुद्ध' बेवकूफ हूं, इसलिए काव्य-चर्चा का मजा लेते हुए भी जान रहा था कि भेंट के बाद काव्य के सिवाय कोई और बात निकलेगी। वे मेरी तारीफ भी करते रहे और मैं बरदाश्त करता रहा। पर मैं जानता था कि वे साहित्य के कारण मेरे पास नहीं आये।

मैंने उनसे कविता सुनाने को कहा। आमतौर पर कवि कविता सुनाने को उत्सुक रहता है, पर वे कविता सुनाने में संकोच कर रहे थे। कविता उन्होंने सुनायी, पर बड़े बेमन से। वे साहित्य के कारण आये ही नहीं थे- वरना कविता की फरमाइश पर तो मुर्दा भी बोलने लगता है।

मैंने कहा- कुछ सुनाइए।

वे बोले- मैं आपसे कुछ लेने आया हूं।

मैंने समझा ये शायद ज्ञान लेने आये हैं।

मैंने सोचा- यह आदमी ईश्वर से भी बड़ा है। ईश्वर को भी प्रोत्साहित किया जाए तो वह अपनी तुकबंदी सुनाने के लिए सारे विश्व को इकट्ठा कर लेगा।

पर ये सज्जन कविता सुनाने में संकोच कर रहे थे और कह रहे थे- हम तो आपसे कुछ लेने आये हैं।

मैं समझता रहा कि ये समाज और साहित्य के बारे में कुछ ज्ञान लेने आये हैं।

कविताएं उन्होंने बड़े बेमन से सुना दीं। मैंने तारीफ की, पर वे प्रसन्न नहीं हुए। यह अचरज की सी बात थी। घटिया से घटिया साहित्यिक सर्जक भी प्रशंसा से पागल हो जाता है। पर वे जरा भी प्रशंसा से विचलित नहीं हुए।

उठने लगे तो बोले- डिपार्टमेंट में मेरा प्रमोशन होना है। किसी कारण अटक गया है। जरा आप सेक्रेटरी से कह दीजिए, तो मेरा काम हो जाएगा।

मैंने कहा- सेक्रेटरी क्यों? मैं मन्त्री से कह दूंगा। पर आप कविता अच्छी लिखते हैं।

एक घण्टे जानकर भी मैं साहित्य के नाम पर बेवकूफ बना- मैं 'अशुद्ध' बेवकूफ हूं।

एक प्रोफेसर साहब क्लास वन के। वे इधर आये। विभाग के डीन मेरे घनिष्ठ मित्र हैं, यह वे नहीं जानते थे। यों वे मुझसे पच्चीसों बार मिल चुके थे। पर जब वे डीन के साथ मिले तो उन्होंने मुझे पहचाना ही नहीं। डीन ने मेरा परिचय उनसे करवाया। मैंने भी ऐसा बर्ताव किया, जैसे यह मेरा उनसे पहला परिचय है।

डीन मेरे यार हैं। कहने लगे- यार चलो केण्टीन में, अच्छी चाय पी जाय। अच्छा नमकीन भी मिल जाए तो मजा आ जाय।

अब क्लास वन के प्रोफेसर साहब थोड़ा चौंके।

हम लोगों ने चाय और नाश्ता किया। अब वे समझ गये कि मैं ‘अशुद्ध’ बेवकूफ हूं।

कहने लगे- सालों से मेरी लालसा थी कि आपके दर्शन करूं। आज यह लालसा पूर्ण हुई।(हालांकि वे कई बार मिल चुके थे। पर डीन सामने थे।)

अंग्रेजी में एक बड़ा अच्छा मुहावरा है- ‘टेक इट विद ए पिंच ऑफ साल्ट’- याने थोड़े नमक के साथ लीजिए। मैंने अपनी तारीफ थोड़े नमक के साथ ले ली।

शाम को प्रोफेसर साहब मेरे घर आये। कहने लगे- डीन साहब तो आपके बड़े घनिष्ठ हैं। उनसे कहिए न कि मुझे पेपर दे दें, कुछ कांपियां भी- और ‘माडरेशन’ के लिए बुला लें तो और अच्छा है।

मैंने कहा- मैं ये सब काम डीन से आपके करवा दूंगा। पर आपने मुझे पहचानने में थोड़ी देर कर दी थी।

बेचारे क्या जवाब देते? अशुद्ध बेवकूफ मैं- मजा लेता रहा कि वे क्लास वन के अफसर नहीं, चपरासी की तरह मेरे पास से विदा हुए। बड़ा आदमी भी कितना बेचारा होता है।

एक दिन मई की भरी दोपहर में एक साहब आ गये। भयंकर गर्मी और धूप। मैंने सोचा कि कोई भयंकर बात हो गई है, तभी ये इस वक्त आये हैं। वे पसीना पोंछकर वियतनाम की बात करने लगे। वियतनाम में अमरीकी बर्बरता की बात कर रहे थे। मैं जानता था कि मैं निक्सन नहीं हूं। पर वे जानते थे कि मैं बेवकूफ हूं। मैं भी जानता था कि इनकी चिंता वियतनाम नहीं है।

घण्टे-भर राजनीतिक बातें हुईं।

वे उठे तो कहने लगे- मुझे जरा दस रुपये दे दीजिए।

मैंने दे दिए और वियतनाम की समस्या आखिर कुल दस रुपये में निपट गई।

एक दिन एक नीति वाले भी आ गये। बड़े तैश में थे।

कहने लगे- हद हो गयी! चेकोस्लोवाकिया में रूस का इतना हस्तक्षेप! आपको फौरन वक्तव्य देना चाहिए।

मैंने कहा- मैं न रूस का प्रवक्ता हूं न चेकोस्लोवाकिया का। मेरे बोलने से क्या होगा।

वे कहने लगे- मगर आप भारतीय हैं, लेखक हैं, बुद्धिजीवी हैं। आपको कुछ कहना ही चाहिए।

मैंने कहा- बुद्धिजीवी वक्तव्य दे रहे हैं। यही काफी है। कल वे ठीक उल्टा वक्तव्य भी दे सकते हैं, क्योंकि वे बुद्धिजीवी हैं।

वे बोले- याने बुद्धिजीवी बेईमान भी होता है?

मैंने कहा- आदमी ही तो ईमानदार और बेईमान होता है। बुद्धिजीवी भी आदमी ही है। वह सुअर या गधे की तरह ईमानदार नहीं हो सकता। पर यह बतलाईये कि इस समय क्या आप चेकोस्लोवाकिया के कारण परेशान हैं? आपकी पार्टी तो काफी नारे लगा रही है। एक छोटा सा नारा आप भी लगा दें और परेशानी से बरी हो जाएं।

वे बोले- बात यह है कि मैं एक खास काम से आपके पास आया था। लड़के ने रूस की लुमुम्बा यूनिवर्सिटी के लिए दरख्वास्त दी है। आप दिल्ली में किसी को लिख दें तो उसका सिलेक्शन हो जाएगा।

मैंने कहा- कुल इतनी-सी बात है। आप चेकोस्लोवाकिया के कारण परेशान हैं। रूस से नाराज हैं। पर लड़के को स्कालरशिप पर रूस भेजना भी चाहते हैं।

वे गुमसुम हो गए। मुझ अशुद्ध बेवकूफ की दया जाग गयी।

मैंने कहा- आप जाइए। निश्चिंत रहिए- लड़के के लिए जो मैं कर सकता हूं करूंगा।

वे चले गए। बाद में मैं मजा लेता रहा। जानते हुए बेवकूफ बनने-वाले 'अशुद्ध' बेवकूफ के अलग मजे हैं।

मुझे याद आया गुरु कबीर ने कहा था-
'माया महा ठगनि हम जानी'।

भारत को चाहिए जादूगर और साधु

हर 15 अगस्त और 26 जनवरी को मैं सोचता हूं कि साल-भर में कितने बढ़े। न सोचूं तो भी काम चलेगा- बल्कि ज्यादा आराम से चलेगा। सोचना एक रोग है, जो इस रोग से मुक्त हैं और स्वस्थ हैं, वे धन्य हैं।

यह 26 जनवरी 1972 फिर आ गया। यह गणतंत्र दिवस है, मगर 'गण' टूट रहे हैं। हर गणतंत्र दिवस 'गण' के टूटने या नये 'गण' बनने के आंदोलन के साथ आता है। इस बार आंध्र और तेलंगाना हैं। अगले साल इसी पावन दिवस पर कोई और 'गण' संकट आयेगा।

इस पूरे साल में मैंने दो चीजें देखीं। दो तरह के लोग बढ़े- जादूगर और साधु बढ़े। मेरा अंदाज था, सामान्य आदमी के जीवन के सुभीते बढ़ेंगे- मगर नहीं। बढ़े तो जादूगर और साधु-योगी। कभी-कभी सोचता हूं कि क्या ये जादूगर और साधु 'गरीबी हटाओ' प्रोग्राम के अंतर्गत ही आ रहे हैं! क्या इसमें कोई योजना है?

रोज अखबार उठाकर देखता हूं। दो खबरें सामने आती हैं- कोई नया जादूगर और कोई नया साधु पैदा हो गया है। उसका विज्ञापन छपता है। जादूगर आंखों पर पट्टी बांधकर स्कूटर चलाता है और 'गरीबी हटाओ' वाली जनता कामधाम छोड़कर, तीन-चार घंटे आंखों पर पट्टी बांधे जादूगर को देखती हजारों की संख्या में सड़क के दोनों तरफ खड़ी रहती है। ये छोटे जादूगर हैं। इस देश में बड़े बड़े जादूगर हैं, जो छब्बीस सालों से आंखों पर पट्टी बांधे हैं। जब वे देखते हैं कि जनता अकुला रही है और कुछ करने पर उतारू है, तो वे फौरन जादू का खेल दिखाने लगते हैं। जनता देखती है, ताली पीटती है। मैं पूछता हूं- जादूगर साहब, आंखों पर पट्टी बांधे राजनैतिक स्कूटर पर किधर जा रहे हो? किस दिशा को जा रहे हो- समाजवाद? खुशहाली? गरीबी हटाओ? कौन सा गन्तव्य है? वे कहते हैं- गन्तव्य से क्या मतलब? जनता आंखों पर पट्टी बांधे जादूगर का खेल देखना चाहती है। हम दिखा रहे हैं। जनता को और क्या चाहिए?

जनता को सचमुच कुछ नहीं चाहिए। उसे जादू के खेल चाहिए। मुझे लगता है, ये दो छोटे-छोटे जादूगर रोज खेल दिखा रहे हैं, इन्होंने प्रेरणा इस देश के राजनेताओं से ग्रहण की होगी। जो छब्बीस सालों से जनता को जादू के खेल दिखाकर खुश रखे हैं, उन्हें तीन-चार घंटे खुश रखना क्या कठिन है। इसलिए अखबार में रोज फोटो देखता हूं, किसी शहर

में नये विकसित किसी जादूगर की।

सोचता हूं, जिस देश में एकदम से इतने जादूगर पैदा हो जाएं, उस जनता की अंदरूनी हालत क्या है? वह क्यों जादू से इतनी प्रभावित है? वह क्यों चमत्कार पर इतनी मुग्ध है? वह जो राशन की दुकान पर लाइन लगाती है और राशन नहीं मिलता, वह लाइन छोड़कर जादू के खेल देखने क्यों खड़ी रहती है?

मुझे लगता है, छब्बीस सालों में देश की जनता की मानसिकता ऐसी बना दी गयी है कि जादू देखो और ताली पीटो। चमत्कार देखो और खुश रहो।

बाकी काम हम पर छोड़ो।

भारत-पाक युद्ध ऐसा ही एक जादू था। जरा बड़े स्केल का जादू था, पर था जादू ही। जनता अभी तक ताली पीट रही है।

उधर राशन की दुकान पर लाइन बढ़ती जा रही है।

देशभक्त मुझे माफ करें। पर मेरा अंदाज है, जल्दी ही एक शिमला शिखर-वार्ता और होगी। भुट्टो कहेंगे- पाकिस्तान में मेरी हालत खस्ता। अलग-अलग राज्य बनना चाह रहे हैं। गरीबी बढ़ रही है। लोग भूखे मर रहे हैं।

हमारी प्रधानमंत्री कहेंगी- इधर भी गरीबी हट नहीं रही। कीमतें बढ़ती जा रही हैं। जनता में बड़ी बेचैनी है। बेकारी बढ़ती जा रही है।

तब दोनों तय करेंगे- क्यों न पंद्रह दिनों का एक और जादू हो जाए। चार-पांच साल दोनों देशों की जनता इस जादू के असर में रहेगी।(देशभक्त माफ करें- मगर जरा सोंचें)

जब मैं इन शहरों के इन छोटे जादूगरों के करतब देखता हूं तो कहता हूं- बच्चों, तुमने बड़े जादू नहीं देखे। छोटे देखे हैं तो छोटे जादू ही सीखे हो।

दूसरा कमाल इस देश में साधु है। अगर जादू से नहीं मानते और राशन की दुकान पर लाइन लगातार बढ़ रही है, तो लो, साधु लो।

जैसे जादूगरों की बाढ़ आयी है, वैसे ही साधुओं की बाढ़ आयी है। इन दोनों में कोई संबंध जरूर है।

साधु कहता है- शरीर मिथ्या है। आत्मा को जगाओ। उसे विश्वात्मा से मिलाओ। अपने को भूलो। अपने सच्चे स्वरूप को पहचानो। तुम सत्-चित्-आनन्द हो।

आनंद ही ब्रह्म है। राशन ब्रह्म नहीं। जिसने 'अन्नं ब्रह्म' कहा था, वह झूठा था। नौसिखिया था। अंत में वह इस निर्णय पर पहुंचा कि अन्न नहीं 'आनन्द' ही ब्रह्म है।

पर भरे पेट और खाली पेट का आनन्द क्या एक सा है? नहीं है तो ब्रह्म एक नहीं अनेक हुए। यह शास्त्रोक्त भी है- 'एको ब्रह्म बहुस्याम।' ब्रह्म एक है पर वह कई हो जाता है। एक ब्रह्म ठाठ से रहता है, दूसरा राशन की दुकान में लाइन से खड़ा रहता है, तीसरा रेलवे के पुल के नीचे सोता है।

सब ब्रह्म ही ब्रह्म है।

शक्कर में पानी डालकर जो उसे वजनदार बनाकर बेचता है, वह भी ब्रह्म है और जो उसे मजबूरी में खरीदता है, वह भी ब्रह्म है।

ब्रह्म, ब्रह्म को धोखा दे रहा है।

साधु का यही कर्म है कि मनुष्य को ब्रह्म की तरफ ले जाय और पैसे इकट्ठे करे; क्योंकि 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या।'

26 जनवरी आते आते मैं यही सोच रहा हूं कि 'हटाओ गरीबी' के नारे को, हटाओ महंगाई को, हटाओ बेकारी को, हटाओ भुखमरी को क्या हुआ?

बस, दो तरह के लोग बहुतायत से पैदा करें- जादूगर और साधु।

ये इस देश की जनता को कई शताब्दी तक प्रसन्न रखेंगे और ईश्वर के पास पहुचा देंगे।

भारत-भाग्य विधाता। हममें वह क्षमता दे कि हम तरह-तरह के जादूगर और साधु इस देश में लगातार बढ़ाते जायें।

हमें इससे क्या मतलब कि 'तर्क की धारा सूखे मरूस्थल की रेत में न छिपे'(रवींद्रनाथ) वह तो छिप गयी। इसलिए जन-गण-मन अधिनायक! बस हमें जादूगर और पेशेवर साधु चाहिए। तभी तुम्हारा यह सपना सच होगा कि हे परमपिता, उस स्वर्ग में मेरा यह देश जाग्रत हो।(जिसमें जादूगर और साधु जनता को खुश रखें)।

यह हो रहा है, परमपिता की कृपा से!

भगत की गत

उस दिन जब भगतजी की मौत हुई थी, तब हमने कहा था- भगतजी स्वर्गवासी हो गए।

पर अभी मुझे मालूम हुआ कि भगतजी, स्वर्गवासी नहीं, नरकवासी हुए हैं। मैं कहूं तो किसी को इस पर भरोसा नहीं होगा, पर यह सही है कि उन्हें नरक में डाल दिया गया है और उन पर ऐसे जघन्य पापों के आरोप लगाये गये हैं कि निकट भविष्य में उनके नरक से छूटने की कोई आशा नहीं है। अब हम उनकी आत्मा की शान्ति की प्रार्थना करें तो भी कुछ नहीं होगा। बड़ी से बड़ी शोक-सभा भी उन्हें नरक से नहीं निकाल सकती।

सारा मुहल्ला अभी तक याद करता है कि भगतजी मंदिर में आधीरात तक भजन करते थे। हर दो-तीन दिनों में वे किसी समर्थ श्रद्धालु से मंदिर में लाउड-स्पीकर लगवा देते और उस पर अपनी मंडली समेत भजन करते। पर्व पर तो चौबीसों घंटे लाउड-स्पीकर पर अखण्ड कीर्तन होता। एक-दो बार मुहल्ले वालों ने इस अखण्ड कोलाहल का विरोध किया तो भगतजी ने भक्तों की भीड़ जमा कर ली और दंगा कराने पर उतारू हो गए। वे भगवान के लाउड-स्पीकर पर प्राण देने और प्राण लेने पर तुल गये थे।

ऐसे ईश्वर-भक्त, जिन्होंने अरबों बार भगवान का नाम लिया, नरक में भेजे गए और अजामिल, जिसने एक बार भूल से भगवान का नाम ले लिया था, अभी भी स्वर्ग के मजे लूट रहा है। अंधेर कहां नहीं है!

भगतजी बड़े विश्वास से उस लोक में पहुंचे। बड़ी देर तक यहां-वहां घूमकर देखते रहे। फिर एक फाटक पर पहुंचकर चौकीदार से पूछा- स्वर्ग का प्रवेश-द्वार यही है न?

चौकीदार ने कहा- हां यही है।

वे आगे बढ़ने लगे, तो चौकीदार ने रोका- प्रवेश-पत्र यानी टिकिट दिखाइए पहले।

भगतजी को क्रोध आ गया। बोले- मुझे भी टिकिट लगेगा यहां? मैंने कभी टिकिट नहीं लिया। सिनेमा मैं बिना टिकिट देखता था और रेल में भी बिना टिकिट बैठता था। कोई मुझसे टिकिट नहीं मांगता। अब यहां स्वर्ग में टिकिट मांगते हो? मुझे जानते हो। मैं भगतजी हूं।

चौकीदार ने शान्ति से कहा- होंगे। पर मैं बिना टिकिट के नहीं जाने दूंगा। आप पहले उस दफ्तर में जाइए। वहां आपके पाप-पुण्य का हिसाब होगा और तब आपको टिकिट मिलेगा।

भगतजी उसे ठेलकर आगे बढ़ने लगे। तभी चौकीदार एकदम पहाड़ सरीखा हो गया और उसने उन्हें उठाकर दफ्तर की सीढ़ी पर खड़ा कर दिया।

भगतजी दफ्तर में पहुंचे। वहां कोई बड़ा देवता फाइलें लिए बैठा था। भगतजी ने हाथ जोड़कर कहा- अहा मैं पहचान गया भगवान कार्तिकेय विराजे हैं।

फाइल से सिर उठाकर उसने कहा- मैं कार्तिकेय नहीं हूं। झूठी चापलूसी मत करो। जीवन-भर वहां तो कुकर्म करते रहे हो और यहां आकर 'हैं-हैं' करते हो। नाम बताओ।

भगतजी ने नाम बताया, धाम बताया।

उस अधिकारी ने कहा- तुम्हारा मामला बड़ा पेचीदा है। हम अभीतक तय नहीं कर पाये कि तुम्हे स्वर्ग दें या नरक। तुम्हारा फैसला खुद भगवान करेंगे।

भगतजी ने कहा- मेरा मामला तो बिल्कुल सीधा है। मैं सोलह आने धार्मिक आदमी हूं। नियम से रोज भगवान का भजन करता रहा हूं। कभी झूठ नहीं बोला और कभी चोरी नहीं की। मंदिर में इनी स्त्रियां आती थीं, पर मैं सबको माता समझता था। मैंने कभी कोई पाप नहीं किया। मुझे तो आंख मूंदकर आप स्वर्ग भेज सकते हैं।

अधिकारी ने कहा- भगतजी आपका मामला उतना सीधा नहीं है, जितना आप समझ रहे हैं। परमात्मा खुद उसमें दिलचस्पी ले रहे हैं। आपको मैं उनके सामने हाजिर किये देता

हूं।

एक चपरासी भगतजी को भगवान के दरबार में ले चला। भगतजी ने रास्ते में ही स्तुति शुरू कर दी। जब वे भगवान के सामने पहुंचे तो बड़े जोर-जोर से भजन गाने लगे-

‘हम भगतन के भगत हमारे,
सुन अर्जुन परतिज्ञा मेरी, यह व्रत टरै न टारे।’

भजन पूरा करके गदगद वाणी में बोले- अहा, जन्म-जन्मान्तर की मनोकामना आज पूरी हुई है। प्रभु, अपूर्व रूप है आपका। जितनी फोटो आपकी संसार में चल रही हैं, उनमें से किसी से नहीं मिलता।

भगवान स्तुति से ‘बोर’ हो रहे थे। रुखाई से बोले- अच्छा अच्छा ठीक है। अब क्या चाहते हो, सो बोलो।

भगतजी ने निवेदन किया- भगवन, आपसे क्या छिपा है! आप तो सबकी मनोकामना जानते हैं। कहा है- राम, झरोखा बैठ के सबका मुजरा लेय, जाकी जैसी चाकरी ताको तैसा देय! प्रभु, मुझे स्वर्ग में कोई अच्छी सी जगह दिला दीजिए।

प्रभु ने कहा- तुमने ऐसा क्या किया है, जो तुम्हें स्वर्ग मिले?

भगतजी को इस प्रश्न से चोट लगी। जिसके लिए इतना किया, वही पूछता है कि तुमने ऐसा क्या किया! भगवान पर क्रोध करने से क्या फायदा- यह सोचकर भगतजी गुस्सा पी गये। दीनभव से बोले- मैं रोज आपका भजन करता रहा।

भगवान ने पूछा- लेकिन लाउड-स्पीकर क्यों लगाते थे?

भगतजी सहज भव से बोले- उधर सभी लाउड-स्पीकर लगाते हैं। सिनेमावाले, मिठाईवाले, काजल बेचने वाले- सभी उसका उपयोग करते हैं, तो मैंने भी कर लिया।

भगवान ने कहा- वे तो अपनी चीज का विज्ञापन करते हैं। तुम क्या मेरा विज्ञापन करते थे? मैं क्या कोई बिकाऊ माल हूं।

भगतजी सन्न रह गये। सोचा, भगवान होकर कैसी बातें करते हैं।

भगवान ने पूछा- मुझे तुम अन्तर्यामी मानते हो न?

भगतजी बोले- जी हां!

भगवान ने कहा- फिर अन्तर्यामी को सुनाने के लिए लाउड-स्पीकर क्यों लगाते थे? क्या मैं बहरा हूं? यहां सब देवता मेरी हंसी उड़ाते हैं। मेरी पत्नी मजाक करती है कि यह भगत तुम्हें बहरा समझता है।

भगतजी जवाब नहीं दे सके।

भगवान को और गुस्सा आया। वे कहने लगे- तुमने कई साल तक सारे मुहल्ले के लोगों को तंग किया। तुम्हारे कोलाहल के मारे वे न काम कर सकते थे, न चैन से बैठ सकते थे और न सो सकते थे। उनमें से आधे तो मुझसे घृणा करने लगे हैं। सोचते हैं, अगर भगवान न होता तो यह भगत इतना हल्ला न मचाता। तुमने मुझे कितना बदनाम किया है!

भगत ने साहस बटोरकर कहा- भगवना आपका नाम लोंगों के कानों में जाता था, यह तो उनके लिए अच्छा ही था। उन्हें अनायास पुण्य मिल जाता था।

भगवान को भगत की मूर्खता पर तरस आया। बोले- पता नहीं यह परंपरा कैसे चली कि भक्त का मूर्ख होना जरूरी है। और किसने तुमसे कहा कि मैं चापलूसी पसंद करता हूं? तुम क्या यह समझते हो कि तुम मेरी स्तुति करोगे तो मैं किसी बेवकूफ अफसर की तरह खुश हो जाऊंगा? मैं इतना बेवकूफ नहीं हूं भगतजी कि तुम जैसे मूर्ख मुझे चला लें। मैं चापलूसी से खुश नहीं होता कर्म देखता हूं।

भगतजी ने कहा- भगवन, मैंने कभी कोई कुकर्म नहीं किया।

भगवान हंसे। कहने लगे- भगत, तुमने आदमियों की हत्या की है। उधर की अदालत से बच गये, पर यहां नहीं बच सकते।

भगतजी का धीरज अब छूट गया। वे अपने भगवान की नीयत के बारे में शंकालु हो उठे। सोचने लगे, यह भगवान होकर झूठ बोलता है। जरा तैश में कहा- आपको झूठ बोलना शोभा नहीं देता। मैंने किसी आदमी की जान नहीं ली। अभी तक मैं सहता गया, पर इस झूठे आरोप को मैं सहन नहीं कर सकता। आप सिद्ध करिए कि मैंने हत्या की।

भगवान ने कहा- मैं फिर कहता हूं कि तुम हत्यारे हो, अभी प्रमाण देता हूं।

भगवान ने एक अधेड़ उम्र के आदमी को बुलाया। भगत से पूछा- इसे पहचानते हो?

हां, यह मेरे मुहल्ले का रमानाथ मास्टर है। पिछले साल बीमारी से मरा था।– भगतजी ने विश्वास से कहा।

भगवान बोले- बीमारी से नहीं, तुम्हारे भजन से मरा है। तुम्हारे लाउड-स्पीकर से मरा है। रमानाथ, तुम्हारी मृत्यु क्यों हुई?

रमानाथ ने कहा- प्रभु मैं बीमार था। डॉक्टर ने कहा कि तुम्हें पूरी तरह नींद और आराम मिलना चाहिए। पर भगतजी के लाउडस्पीकर पर अखण्ड कीर्तन के मारे मैं सो न सका, न आराम कर सका। दूसने दिन मेरी हालत बिगड़ गयी और चौथे दिन मैं मर गया।

भगत सुनकर घबरा उठे।

तभी एक बीस-इक्कीस साल का लड़का बुलाया गया। उससे पूछा- सुरेंद्र,तुम कैसे मरे?

मैंने आत्महत्या कर ली थी- उसने जवाब दिया।

आत्महत्या क्यों कर ली थी?- भगवान ने पूछा।

सुरेंद्रनाथ ने कहा- मैं परीक्षा में फेल हो गया था।

परीक्षा में फेल क्यों हो गये थे?

भगतजी के लाउड-स्पीकर के कारण मैं पढ़ नहीं सका। मेरा घर मंदिर के पास ही है न!

भगतजी को याद आया कि इस लड़के ने उनसे प्रार्थना की थी कि कम से कम परीक्षा के दिनों में लाउड-स्पीकर मत लगाइए।

भगवान ने कठोरता से कहा- तुम्हाने पापों को देखते हुए मैं तुम्हें नरक में डाल देने का आदेश देता हूं।

भगतजी ने भागने की कोशिश की, पर नरक के डरावने दूतों ने उन्हें पकड़ लिया।

अपने भगतजी, जिन्हें हम धर्मात्मा समझते थे, नरक भोग रहे हैं।

मुण्डन

किसी देश की संसद में एक दिन बड़ी हलचल मची। हलचल का कारण कोई राजनीतिक समस्या नहीं थी, बल्कि यह था कि एक मंत्री का अचानक मुण्डन हो गया था। कल तक उनके सिर पर लंबे घुंघराले बाल थे, मगर रात में उनका अचानक मुण्डन हो गया था।

सदस्यों में कानाफूसी हो रही थी कि इन्हें क्या हो गया है। अटकलें लगने लगीं। किसी ने कहा- शायद सिर में जूं हो गयी हों। दूसरे ने कहा- शायद दिमाग में विचार भरने के लिए बालों का पर्दा अलग कर दिया हो। किसी और ने कहा- शायद इनके परिवार में किसी की मौत हो गयी। पर वे पहले की तरह प्रसन्न लग रहे थे।

आखिर एक सदस्य ने पूछा- अध्यक्ष महोदय! क्या मैं जान सकता हूं कि माननीय मंत्री महोदय के परिवार में क्या किसी की मृत्यु हो गयी है?

मंत्री ने जवाब दिया- नहीं।

सदस्यों ने अटकल लगायी कि कहीं उन लोगों ने ही तो मंत्री का मुण्डन नहीं कर दिया, जिनके खिलाफ वे बिल पेश करने का इरादा कर रहे थे।

एक सदस्य ने पूछा- अध्यक्ष महोदय! क्या माननीय मंत्री को मालूम है कि उनका मुण्डन हो गया है? यदि हां, तो क्या वे बतायेंगे कि उनका मुण्डन किसने कर दिया है?

मंत्री ने संजीदगी से जवाब दिया- मैं नहीं कह सकता कि मेरा मुण्डन हुआ है या नहीं!

कई सदस्य चिल्लाये- हुआ है! सबको दिख रहा है।

मंत्री ने कहा- सबको दिखने से कुछ नहीं होता। सरकार को दिखना चाहिए। सरकार इस बात की जांच करेगी कि मेरा मुण्डन हुआ है या नहीं।

एक सदस्य ने कहा- इसकी जांच अभी हो सकती है। मंत्री महोदय अपना हाथ सिर पर फेरकर देख लें।

मंत्री ने जवाब दिया- मैं अपना हाथ सिर पर फेरकर हर्गिज नहीं देखूंगा। सरकार इस मामले में जल्दबाजी नहीं करती। मगर मैं वायदा करता हूं कि मेरी सरकार इस बात की विस्तृत जांच करवाकर सारे तथ्य सदन के सामने पेश करेगी।

सदस्य चिल्लाये- इसकी जांच की क्या जरूरत है? सिर आपका है और हाथ भी आपके हैं। अपने ही हाथ को सिर पर फेरने में मंत्री महोदय को क्या आपत्ति है?

मंत्री बोले- मैं सदस्यों से सहमत हूं कि सिर मेरा है और हाथ भी मेरे हैं। मगर हमारे हाथ परंपराओं और नीतियों से बंधे हैं। मैं अपने सिर पर हाथ फेरने के लिए स्वतंत्र नहीं हूं। सरकार की एक नियमित कार्यप्रणाली होती है। विरोधी सदस्यों के दबाव में आकर मैं उस प्रणाली को भंग नहीं कर सकता। मैं सदन में इस संबंध में एक वक्तव्य दूंगा।

शाम को मंत्री महोदय ने सदन में वक्तव्य दिया-
अध्यक्ष महोदय! सदन में ये प्रश्न उठाया गया कि मेरा मुण्डन हुआ है या नहीं? यदि हुआ है तो किसने किया है? ये प्रश्न बहुत जटिल हैं। और इस पर सरकार जल्दबाजी में कोई निर्णय नहीं दे सकती। मैं नहीं कह सकता कि मेरा मुण्डन हुआ है या नहीं। जब तक जांच पूरी न हो जाए, सरकार इस संबंध में कुछ नहीं कह सकती। हमारी सरकार तीन व्यक्तियों की एक जांच समिति नियुक्त करती है, जो इस बात की जांच करेगी। जांच समिति की रिपोर्ट मैं सदन में पेश करूंगा।

सदस्यों ने कहा- यह मामला कुतुब मीनार का नहीं जो सदियों जांच के लिए खड़ी रहेगी। यह आपके बालों का मामला है, जो बढ़ते और कटने रहते हैं। इसका निर्णय तुरंत होना चाहिए।

मंत्री ने जवाब दिया- कुतुब मीनार से हमारे बालों की तुलना करके उनका अपमान करने का अधिकार सदस्यों को नहीं है। जहां तक मूल समस्या का संबंध है, सरकार जांच के पहले कुछ नहीं कह सकती।

जांच समिति सालों जांच करती रही। इधर मंत्री के सिर पर बाला बढ़ते रहे।

एक दिन मंत्री ने जांच समिति की रिपोर्ट सदन के सामने रख दी।

जांच समिति का निर्णय था कि मंत्री का मुण्डन नहीं हुआ था।

सत्ताधारी दल के सदस्यों ने इसका स्वागत हर्ष-ध्वनि से किया।

सदन के दूसरे भाग से 'शर्म-शर्म' की आवाजें उठीं। एतराज उठे- यह एकदम झूठ है। मंत्री का मुण्डन हुआ था।

मंत्री मुस्कुराते हुए उठे और बोले- यह आपका ख्याल हो सकता है। मगर प्रमाण तो चाहिए। आज भी अगर आप प्रमाण दे दें तो मैं आपकी बात मान लेता हूं।

ऐसा कहकर उन्होंने अपने घुंघराले बालों पर हाथ फेरा और सदन दूसरे मसले सुलझाने में व्यस्त हो गया।

दो नाक वाले लोग

मैं उन्हें समझा रहा था कि लड़की की शादी में टीमटाम में व्यर्थ खर्च मत करो।

पर वे बुजुर्ग कह रहे थे- आप ठीक कहते हैं, मगर रिश्तेदारों में नाक कट जाएगी।

नाक उनकी काफी लंबी थी। मेरा ख्याल है, नाक की हिफाजत सबसे ज्यादा इसी देश में होती है। और या तो नाक बहुत नर्म होती है या छुरा बहुत तेज, जिससे छोटी सी बात से भी नाक कट जाती है। छोटे आदमी की नाक बहुत नाजुक होती है। यह छोटा आदमी नाक को छिपाकर क्यों नहीं रखता?

कुछ बड़े आदमी, जिनकी हैसियत है, इस्पात की नाक लगवा लेते हैं और चमड़े का रंग चढ़वा लेते हैं। कालाबाजार में जेल हो आए हैं औरत खुलेआम दूसरे के साथ 'बाक्स' में सिनेमा देखती है, लड़की का सार्वजनिक गर्भपात हो चुका है। लोग उस्तरा लिए नाक काटने को घूम रहे हैं। मगर काटें कैसे? नाक तो स्टील की है। चेहरे पर पहले जैसी ही फिट है और शोभा बढ़ा रही है।

स्मगलिंग में पकड़े गये हैं। हथकड़ी पड़ी है। बाजार में से ले जाये जा रहे हैं। लोग नाक काटने को उत्सुक हैं। पर वे नाक को तिजोड़ी मे रखकर स्मगलिंग करने गये थे। पुलिस को खिला-पिलाकर बरी होकर लौटेंगे और फिर नाक पहन लेंगे।

जो बहुत होशियार हैं, वे नाक को तलवे में रखते हैं। तुम सारे शरीर में ढूंढो, नाक ही नहीं मिलती। नातिन की उम्र की दो लड़कियों से बलात्कार कर चुके हैं। जालसाजी और बैंक को धोखा देने में पकड़े जा चुके हैं। लोग नाक काटने को उतावले हैं, पर नाक मिलती ही नहीं। वह तो तलवे में है। कोई जीवशास्त्री अगर नाक की तलाश भी कर दे तो तलवे की नाक काटने से क्या होता है? नाक तो चेहरे पर की कटे, तो कुछ मतलब होता है।

और जो लोग नाक रखते ही नहीं हैं, उन्हें तो कोई डर ही नहीं है। दो छेद हैं, जिनसे सांस ले लेते हैं।

कुछ नाकें गुलाब के पौधे की तरह होती हैं। कलम कर दो तो और अच्छी शाखा बढ़ती है और फूल भी बढ़िया लगते हैं। मैंने ऐसी फूलवाली खुशबूदार नाकें बहुत देखीं हैं। जब खुशबू कम होने लगती है, ये फिर कलम करा लेते हैं, जैसे किसी औरत को छेड़ दिया और जूते खा गये।

'जूते खा गये' अजब मुहावरा है। जूते तो मारे जाते हैं। वे खाये कैसे जाते हैं? मगर भारतवासी इतना भुखमरा है कि जूते भी खा जाता है।

नाक और तरह से भी बढ़ती है। एक दिन एक सज्जन आये। बड़े दुखी थे। कहने लगे-हमारी तो नाक कट गयी। लड़की ने भागकर एक विजातीय से शादी कर ली। हम ब्राह्मण और लड़का कलाल! नाक कट गयी।

मैंने उन्हें समझाया कि कटी नहीं है, कलम हुई है। तीन-चार महीनों में और लंबी बढ़ जाएगी।

तीन-चार महीने बाद वे मिले तो खुश थे। नाक भी पहले से लंबी हो गयी थी। मैंने कहा-नाक तो पहले से लंबी मालूम होती है।

वे बोले- हां, कुछ बढ़ गयी है। काफी लोग कहते हैं, आपने बड़ा क्रांतिकारी काम किया। कुछ बिरादरी वाले भी कहते हैं। इसलिए नाक बढ़ गयी है।

कुछ लोग मैंने देखे हैं जो कई साल अपने शहर की नाक रहे हैं। उनकी नाक अगर कट जाए तो सारे शहर की नाक कट जाती है। अगर उन्हें संसद का टिकिट न मिले, तो सारा शहर नकटा हो जाता है। पर अभी मैं एक शहर गया तो लोगों ने पूछा- फलां साहब के क्या हाल हैं? वे इस शहर की नाक हैं। तभी एक मसखरे ने कहा- हां साहब, वे अभी भी शहर की नाक हैं, मगर छिनकी हुई।(यह वीभत्स रस है। रस सिद्धांत प्रेमियों को अच्छा लगेगा।)

मगर बात मैं उन सज्जन की कर रहा था जो मेरे सामने बैठे थे और लड़की की शादी पुराने ठाठ से ही करना चाहते थे। पहले वे रईस थे- याने मध्यम हैसियत के रईस। अब गरीब थे। बिगड़ा रईस और बिगड़ा घोड़ा एक तरह के होते हैं- दोनों बौखला जाते हैं। किससे उधार लेकर खा जाएं, ठिकाना नहीं। उधर बिगड़ा घोड़ा किसे कुचल दे, ठिकाना नहीं। आदमी को बिगड़े रईस और बिगड़े घोड़े, दोनों से दूर रहना चाहिए। मैं भरसक कोशिश करता हूं। मैं तो मस्ती से डोलते आते सांड को देखकर भी सड़क के किनारे की इमारत के बरामदे में चढ़ जाता हूं- बड़े भाईसाहब आ रहे हैं। इनका आदर करना चाहिए।

तो जो भूतपूर्व संपन्न बुजुर्ग मेरे सामने बैठे थे, वे प्रगतिशील थे। लड़की का अन्तरजातीय विवाह कर रहे थे। वे खत्री और लड़का शुद्ध कान्यकुब्ज। वे खुशी से शादी कर रहे थे। पर उसमें विरोधाभास यह था कि शादी ठाठ से करना चाहते थे। बहुत लोग एक परंपरा से छुटकारा पा लेते हैं, पर दूसरी से बंधे रहते हैं। रात को शराब की पार्टी से किसी ईसाई दोस्त के घर आ रहे हैं, मगर रास्ते में हनुमान का मंदिर दिख जाए तो थोड़ा तिलक भी सिंदूर का लगा लेंगे। मेरा एक घोर नास्तिक मित्र था। हम घूमने निकलते तो रास्ते में मंदिर देखकर वे कह उठते- हरे राम! बाद में पछताते भी थे।

तो मैं उन बुजुर्ग को समझा रहा था- आपके पास रुपये हैं नहीं। आप कर्ज लेकर शादी का ठाठ बनायेंगे। पर कर्ज चुकायेंगे कहां से? जब आपने इतना नया कदम उठाया है, कि अन्तरजातीय विवाह कर रहे हैं, तो विवाह भी नये ढंग से कीजिए। लड़का कान्यकुबज का है। बिरादरी में शादी करता तो कई हजार उसे मिलते। लड़के शादी के बाजार में मवेशी की तरह बिकते हैं। अच्छा मालवी बैल और हरयाणा की भैंस ऊंची कीमत पर बिकती हैं। लड़का इतना त्याग तो लड़की के प्रेम के लिए कर चुका। फिर भी वह कहता है- अदालत जाकर शादी कर लेते हैं। बाद में एक पार्टी कर देंगे। आप आर्य-समाजी हैं।

घण्टे भर में रास्ते में आर्यसमाज मंदिर में वैदिक रीति से शादी कर डालिए। फिर तीन-चार सौ रुपयों की एक पार्टी दे डालिए। लड़के को एक पैसा भी नहीं चाहिए। लड़की के कपड़े वगैरह मिलाकर शादी हजार में हो जाएगी।

वे कहने लगे- बात आप ठीक कहते हैं। मगर रिश्तेदारों को तो बुलाना ही पड़ेगा। फिर जब वे आयेंगे तो इज्जत के ख्याल से सजावट, खाना, भेंट वगैरह देनी होगी।

मैंने कहा- आपका यहां तो कोई रिश्तेदार है नहीं। वे हैं कहां?

उन्होंने जवाब दिया- वे पंजाब में हैं। पटियाला में ही तीन करीबी रिश्तेदार हैं। कुछ दिल्ली में हैं। आगरा में हैं।

मैंने कहा- जब पटियाला वाले के पास आपका निमंत्रण-पत्र पहुचेगा, तो पहले तो वह आपको दस गालियां देगा- मई का यह मौसम, इतनी गर्मी। लोग तड़ातड़ लू से मर रहे हैं। ऐसे में इतना खर्च लगाकर जबलपुर जाओ। कोई बीमार हो जाए तो और मुसीबत। पटियाला या दिल्ली वाला आपका निमंत्रण पाकर खुश नहीं दुखी होगा। निमंत्रण-पत्र न मिला तो वह खुश होगा और बाद में बात बनायेगा। कहेगा- आजकल जी, डाक की इतनी गड़बड़ी हो गयी है कि निमंत्रण पत्र ही नहीं मिला। वरना ऐसा हो सकता था कि हम ना आते।

मैंने फिर कहा- मैं आपसे कहता हूं कि दूर से रिश्तेदार का निमंत्रण पत्र मुझे मिलता है, तो मैं घबरा उठता हूं।

सोचता हूं- जो ब्राह्मण ग्यारह रुपये में शनि को उतार दे, पच्चीस रुपयों में सगोत्र विवाह करा दे, मंगली लड़की का मंगल पंद्रह रुपयों में उठाकर शुक्र के दायरे में फेंक दे, वह लग्न सितंबर से लेकर मार्च तक सीमित क्यों नहीं कर देता ? मई और जून की भयंकर गर्मी की लग्नें गोल क्यों नहीं कर देता ? वह कर सकता है। और फिर ईसाई और मुसलमानों में जब बिना लग्न शादी होती है, तो क्या वर-वधू मर जाते हैं ? आठ प्रकार के विवाहों में जो 'गंधर्व विवाह' है वह क्या है ? वह यही शादी है जो आज होने लगा है, कि लड़का-लड़की भागकर कहीं शादी कर लेते हैं। इधर लड़की का बाप गुस्से में पुलिस में रिपोर्ट करता है कि अमुक लड़का हमारी 'नाबालिग' लड़की को भगा ले गया है। मगर कुछ नहीं होता; क्योंकि लड़की मैट्रिक का सर्टिफिकेट साथ ले जाती है जिसमें जन्म-तारीख होती है।

वे कहने लगे- नहीं जी, रिश्तेदारों में नाक कट जाएगी।

मैंने कहा- पटियाला से इतना किराया लगाकर नाक काटने इधर कोई नहीं आयेगा। फिर पटियाला में कटी नाक को कौन इधर देखेगा। काट लें पटियाला में।

वे थोड़ी देर गुमसुम बैठे रहे।

मैंने कहा- देखिए जी, आप चाहें तो मैं पुरोहित हो जाता हूं और घण्टे भर में शादी करा देता हूं।

वे चौंके। कहने लगे- आपको शादी कराने की विधि आती है ?

मैंने कहा- हां, ब्राह्मण का बेटा हूं। बुजुर्गों ने सोचा होगा कि लड़का नालायक निकल जाए और किसी काम-धन्धे के लायक न रहे, तो इसे कम से कम सत्यनारायण की कथा और विवाह विधि सिखा दो। ये मैं बचपन में ही सीख गया था।

मैंने आगे कहा- और बात यह है कि आजकल कौन संस्कृत समझता है। और पण्डित क्या कह रहा है, इसे भी कौन सुनता है। वे तो ‘अम’ और ‘अह’ इतना ही जानते हैं। मैं इस तरह मंगल-श्लोक पढ़ दूं तो भी कोई ध्यान नहीं देगा-

> ओम जेक एण्ड विल वेंट अप दी हिल टु फेच ए पेल ऑफ वाटरम,
> ओम जेक फैल डाउन एण्ड ब्रोक हिज क्राउन एण्ड जिल केम ट्रम्बलिंग
> आफ्टर कुर्यात् सदा मंगलम्........इसे लोग वैदिक मंत्र समझेंगे।

वे हंसने लगे।

मैंने कहा- लड़का उत्तर प्रदेश का कान्यकुब्ज और आप पंजाब के खत्री- एक दूसरे के रिश्तेदारों को कोई नहीं जानता। आप एक सलाह मेरी मानिए। इससे कम में भी निपट जाएगा और नाक भी कटने से बच जाएगी। लड़के के पिता की मृत्यु हो चुकी है। आप घण्टे भर में शादी करवा दीजिए। फिर रिश्तेदारों को चिट्ठियां लिखिए- ‘इधर लड़के के पिता को दिल का तेज दौरा पड़ा। डाक्टरों ने उम्मीद छोड़ दी थी। दो-तीन घंटे वे किसी तरह जी सकते थे। उन्होंने इच्छा प्रकट की कि मृत्यु के पहले ही लड़के की शादी हो जाए तो मेरी आत्मा को शान्ति मिल जाएगी। लिहाजा उनकी भावना को देखते हुए हमने फौरन शादी कर दी। लड़का-लड़की वर-वधू के रूप में उनके सामने आये। उनसे चरणों पर

सिर रखे। उन्होंने इतना ही कहा- सुखी रहो। और उनके प्राण-पखेरू उड़ गये। आप माफ करेंगे कि इसी मजबूरी के कारण हम आपको शादी में नहीं बुला सके। कौन जानता है आपके रिश्तेदारों में कि लडंके के पिता की मृत्यु कब हुई ?

उन्होंने सोचा। फिर बोले- तरकीब ठीक है ! पर इस तरह की धोखाधड़ी मुझे पसंद नहीं।

खैर मैं उन्हें काम का आदमी लगा नहीं।

दूसरे दिन मुझे बाहर जाना पड़ा। दो-तीन महीने बाद लौटा तो लोगों ने बताया कि उन्होंने सामान और नकद लेकर शादी कर डाली।

तीन-चार दिन बाद से ही साहूकार सवेरे से तकादा करने आने लगे।

रोज उनकी नाक थोड़ी-थोड़ी कटने लगी।

मैंने पूछा- अब क्या हाल हैं ?

लोग बोले- अब साहूकार आते हैं तो यह देखकर निराश लौट जाते हैं कि काटने को नाक ही नहीं बची।

मैंने मजाक में कहा- साहूकारों से कह दो कि इनकी दूसरी नाक पटियाला में पूरी रखी है। वहां जाकर काट लो।